कृदन्त रहस्यम्

डॉ. एच.आर. रैदास

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

डा० अच्युतानन्द दाश,
प्रवाचक,
संस्कृत विभाग,
डा० हरीसिंह गौर वि० वि०,
सागर

कृदन्त-रहस्यम्

डॉ. एच.आर. रैदास

❐ प्रादेशिक भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थों और साहित्य के निर्माण के लिए भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा) की केन्द्र प्रवर्तित योजनान्तर्गत, भारत सरकार के द्वारा रियायती दर पर उपलब्ध कराये गये कागज एवं मध्यप्रदेश शासन की ओर से प्राप्त अनुदान की मदद से रियायती मूल्य पर मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल द्वारा प्रकाशित।

प्रकाशक : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बानगंगा,
भोपाल (म.प्र.) 462 003
दूरभाष (0755) 2553084

संस्करण : प्रथम - 2003

मूल्य : रु. 35 .00 (रु. पैंतीस) मात्र

कम्पोजिंग : सोनी ग्राफिक्स
आवरण एल.आई.जी. 11 सोनागिरी, भोपाल

मुद्रक : मध्यांचल प्रकाशन प्रा. लि., भोपाल (म.प्र.), दूरभाष : 2766926

समर्पणम्

प्रणम्य तं जगत्पतिं संस्मृत्य च तां महतीं सरस्वतीम्।
नत्वोमापतिसूनुं करोमि शब्दगुम्फनमिहाहम्॥

भजामि श्रीगुरुं मोतीलालं पुरोहितं सदा।
मूर्तिर्यशोमयी येषां सततं राजते मुदा॥

स्व. डॉ. मोतीलाल पुरोहित प्रज्ञाचक्षु
के श्री चरणों में यह प्रथम नैवेद्य समर्पित है।

विदुषां वशंवदः
डॉ. एच.आर. रैदासः

प्राक्कथन
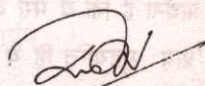
भाषा मनुष्य के बीच संवाद का जरिया है। भाषा और उसमें अन्तर्निहित शब्दों को बहुत लम्बी यात्रा से गुजरना होता है तब वह भाषा अभिव्यक्तिक्षम हो पाती है। स्वभावतः मनुष्य का संस्कार उसकी मातृभाषा से ही पोषित एवं विकसित होता है। इसलिए मातृभाषा को मनुष्य के बुनियादी सोच की भाषा माना जाता है। संभवतः इसीलिए इस विषय पर सहमति है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी का कार्य हिन्दी में उच्च शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सभी विषयों का साहित्य उपलब्ध कराना है। विगत 30 वर्षों से अकादमी यह काम बखूबी कर रही है। स्नातक स्तर तक मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले सभी विषयों की पाठ्य सामग्री अकादमी ने हिन्दी में उपलब्ध करा दी है। स्नातकोत्तर स्तर पर माध्यम परिवर्तन के लिये हिन्दी में पाठ्यक्रम आधारित पुस्तकों/मोनोग्राफ के लेखन-प्रकाशन के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे विद्यार्थियों की सुविधा के लिए मध्यप्रदेश शासन, उच्च शिक्षा विभाग द्वारा गठित संस्था है। हिन्दी के चहुँमुखी विकास की दृष्टि से मैं यह आवश्यक मानता हूँ कि सभी अधुनातन विषयों में भी स्तरीय प्रामाणिक पुस्तकें हिन्दी में सहज उपलब्ध होना चाहिए। यह संतोष का विषय है कि प्रदेश के प्राध्यापकों के रचनात्मक सहयोग से अकादमी इसी लक्ष्य की ओर बढ़ रही है।

अकादमी के कार्यकलापों में शासन की सम्पूर्ण भागीदारी है। इस नाते मैं चाहूँगा कि प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के प्राध्यापक अकादमी प्रकाशनों को अपना समर्थन और प्रोत्साहन दें।

प्रामाणिक पुस्तकों के प्रकाशन के लिए अकादमी आपके रचनात्मक सुझावों का स्वागत करेगी।

(रत्नेश सॉलोमन)

मंत्री, उच्चशिक्षा, मध्यप्रदेश शासन

अध्यक्ष, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

पुरोवाक्

शब्दब्रह्म का संबंध आत्मा से है। आत्मा परमात्मा का अंश है। परमपिता की कृपा का लेशमात्र यह जीवन है। ज्ञानामृत है। महाभाष्यकार आचार्य पतञ्जलि ने लिखा है– "एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति।" जिस प्रकार शरीर के संस्कार से दीर्घायुष् की प्राप्ति होती है, उसी भाँति शुद्ध, संस्कृत, पवित्र और पुनीत वाणी के प्रयोग से जीव को मोक्ष मिलता है। इसीलिए ईशावास्योपनिषद में लिखा है– विद्ययाऽमृतमश्नुते। शरीर का धर्म है कर्म करना और आत्मा का धर्म है ज्ञानार्जन। अतः संस्कृत को देववाणी कहा गया है। अमरवाणी, देवीवाक् और गीर्वाणवाणी भी संस्कृत भाषा के विशेषण हैं।

जिस प्रकार कुशल इन्जीनियर भव्य भवन का निर्माण यांत्रिक तकनीकी से करता है, चतुर स्वर्णकार सोने से सुन्दर-सुन्दर आभूषणों को आकार देता है और कुम्भकार कच्ची मिट्टी (धातु) से लुभावने घट और कलशियाँ घड़ता है, उसी भाँति वैयाकरण भी धातुओं (Roots) में प्रत्यय (Suffix) लगाकर शुद्ध, संस्कृत, शब्दों का निर्माण, सृजन, रचना और संस्कार करता है। जैसे- स्वच्छ, संस्कृत, भोजन, वस्त्र और आवास, अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घायु व जीवन देते हैं, वैसे ही शुद्ध पवित्र, संस्कृत शब्दों के प्रयोग से ऐहलौकिक और पारलौकिक मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं और मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है। इसीलिए महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना की थी। "सा विद्या या विमुक्तये।"

भोपाल विश्वविद्यालय की स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के नियमित एवं स्वाध्यायी छात्रों की दीर्घकाल से यह शिकायत रही है कि लघु सिद्धांत-कौमुदी के कृदन्त प्रकरण का प्रायोगिक रूप बाजार में उपलब्ध न होने से अध्ययन प्रभावित होता है और संस्कृत शब्दों को बनाने की प्रक्रिया का सम्यक ज्ञान नहीं हो पाता।

ऐसे विद्यार्थियों की आकांक्षाओं को पूर्ण करने की दृष्टि से मैंने यह क्षुद्र प्रयास किया है। जिज्ञासु छात्रों को यदि इस "कृति" से कुछ लाभ हो सकता है तो मैं अपने आपको धन्य मानूँगा। मेरा यह बौना प्रयास सुधीजनों की पिपासा शान्त करने में शायद अक्षम हो। उनसे तो मेरी यही प्रार्थना है कि वे मेरी कमियों को मुझ तक पहुँचाकर मुझे कृतार्थ करें।

"प्रायः मुह्यन्ति हि ये लिखन्ति।"

विशिष्ट ज्ञान के लिए छात्र परिशिष्ट का अवलोकन अवश्य करें। रूपसिद्धि भाग में सूत्रों को संकेत रूप में दर्शाया गया है। जबकि परिशिष्ट में संपूर्ण सूत्र लिखकर उसका अर्थ भी बताया गया है।

– एच.आर.रैदास

विषयानुक्रमणिका

कृत्य- प्रक्रिया

पूर्वकृदन्त

उत्तर कृदन्त

कृत्य-प्रक्रिया

1. धातोः- 3.1.91 आतृतीयाध्यायसमाप्त्यन्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। कृदतिङ्. इति कृत्संज्ञा।

सूत्रार्थ– तृतीय अध्याय की समाप्ति पर्यन्त जितने भी प्रत्यय हैं, वे धातु के बाद लगते हैं। "कृदतिङ्." सूत्र द्वारा इन प्रत्ययों की कृत्संज्ञा हुई है। अर्थात् कृत् प्रत्यय तिङन्त नहीं होते। धातोः अधिकार सूत्र है और इसका अधिकार धातोः 3.1.91 सूत्र से लेकर अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय के अन्तिम सूत्र "छन्दस्युभयथा" 3.4.117 तक है। इन सूत्रों में जिन प्रत्ययों का विधान है, वे धातु के बाद आते हैं।

2. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् :– 3.1.94 अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

सूत्रार्थ – 'स्त्रियाम्' अधिकार में विधान किए गए प्रत्ययों को छोड़कर धातोः अधिकार में कहे गए असरूप (भिन्न रूप वाले) प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

अभिप्राय यह है कि सर्वत्र अपवाद सूत्र सामान्य या उत्सर्ग (नियम) सूत्र का बाधक होता है, किन्तु 'वाऽसरूपो." सूत्र से धातु अधिकार में असमान प्रत्ययों के विषय में यह बाध विकल्प से होता है।

पक्ष में सामान्य सूत्र भी प्रवृत्त होता है। यही इस सूत्र का प्रयोजन है। उदाहरण के लिए 'ण्वुल्तृचौ' सामान्य सूत्र है और इसके अनुसार सभी धातुओं से ण्वुल् और तृच् प्रत्ययों का विधान किया गया है। किन्तु 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" असरूप अपवाद सूत्र इस (ण्वुल्तृचौ) का बाध करके 'क' प्रत्यय का विधान करता है। वैसे तो यहाँ केवल अपवाद सूत्र ही लागू होना चाहिए था, किन्तु यहाँ दोनों ही सूत्र (1) धात्वधिकार में हैं और (2) दोनों ही स्थलों में असमान (असरूप) प्रत्ययों का विधान किया गया है। इसलिए प्रकृत सूत्र 'वाऽसरूपो.' से विकल्प से सामान्य (उत्सर्ग) सूत्र (ण्वुल्तृचौ) भी प्रवृत्त होगा।

उदाहरणार्थ – वि उपसर्ग पूर्वक 'क्षिप्' धातु से "क" प्रत्यय होकर 'विक्षेपः' रूप बनता है (इगुपध. अपवाद सूत्र द्वारा)। किन्तु उत्सर्ग सूत्र "ण्वुल्तृचौ" द्वारा पक्ष में वि+क्षिप्+ण्वुल् = विक्षेपकः' तथा वि+क्षिप्+तृच् = 'विक्षेप्ता' रूप बनता है। अर्थात् दोनों अपवाद और

उत्सर्ग सूत्र यहाँ प्रवृत्त हुए हैं। क्योंकि दोनों सूत्र (1) धात्वधिकार में हैं। (2) प्रत्यय असमान रूप वाले हैं और (3) स्त्रयधिकार के अन्तर्गत नहीं है। इन तीनों शर्तों में से एक का भी उल्लंघन होने पर उपर्युक्त नियम लागू नहीं होगा।

मान लीजिए 'सामान्य' सूत्र और 'अपवाद' सूत्र में विद्यमान प्रत्यय समान रूप वाले हैं तो क्या वाऽसरूपो. सूत्र प्रवृत्त होगा। कदापि नहीं, क्योंकि यहाँ असरूप नियम का उल्लंघन हो गया है। जैसे- 'कर्मण्यण्' (उत्सर्ग) और आतोऽनुपसर्गे कः (अपवाद) दोनों में 'अ' शेष रहता है अर्थात् ये समान रूप वाले प्रत्यय हैं। अतः यहाँ अपवाद सूत्र आतोऽनु. ही प्रवृत्त होगा, उत्सर्ग सूत्र कर्मण्यण् नहीं और इसीलिए 'क' प्रत्यय लगकर गोदः, कम्बलदः रूप बनते हैं।

इसी प्रकार स्त्री अधिकार में भी प्रकृत सूत्र 'वाऽसरूपो'. प्रवृत्त नहीं होगा। फलस्वरूप यहाँ भी अपवाद सूत्र समान्य सूत्र का बाधक होगा। जैसे - स्त्रियांक्तिन् सामान्य सूत्र है और 'अप्रतययात' उसका अपवाद सूत्र। यहाँ दोनों ही सूत्र (1) धात्वधिकार में कथित हैं और दोनों के प्रत्यय भी सरूप में भिन्न हैं, किन्तु क्तिन् आदि स्त्री अधिकार में कथित होने के कारण प्रकृत सूत्र (वाऽसरूपो.) प्रवृत्त नहीं होगा। ऐसी स्थिति में उत्सर्ग सूत्र के क्तिन् का अपवाद सूत्र अप्रत्ययात् से बाध होकर 'अ' आदेश होने पर 'चिकीर्षा' और 'जिहीर्षा' रूप बनते हैं।

3. कृत्याः – 3.1.95 ण्वुल्तृचौ इत्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः।

सूत्रार्थ – ण्वुल्तृचौ सूत्र से पूर्ववर्ती सभी प्रत्यय कृत्य संज्ञक हों। यह भी अधिकार सूत्र है।

'कृत्याः' का अधिकार होने के कारण ही इस प्रकरण को कृत्य प्रक्रिया कहते हैं।

4. कर्तरि कृत - 3.4.67 कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात् इति प्राप्ते।

सूत्रार्थ – कृत् प्रत्यय धातु से कर्ता अर्थ में होता है। इससे सभी कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में प्राप्त हुए।

5. तयोरेव कृत्य-क्त-खलर्थाः 3.4.70 एते भावकर्मणोरेव स्युः।

सूत्रार्थ– ये (कृत्य, क्त और खलर्थ) प्रत्यय भाव और कर्म में ही होते हैं। कर्ता में नहीं।

अभिप्राय यह है कि सकर्मक धातुओं से कर्म में और अकर्मक धातुओं से भाव में ही कृत्य, क्त और खल् अर्थ वाले प्रत्यय लगते हैं। खल् प्रत्यय क्रिया को कठिनाई से या सरलता से किए जाने वाले अर्थ को प्रकट करता है। इस अर्थ के सभी अन्य प्रत्ययों को ग्रहण करने के लिए यहाँ खलर्थ प्रत्यय कहा है। इनके उदाहरण क्रमशः निम्नानुसार हैं–

(1) कृत्य - (तव्यत्तव्य. आदि) कर्मवाच्य में - कर्तव्यः कटो भवता।

भाववाच्य में - शयितव्यं भवता।

(2) क्त- कर्मवाच्य में - कृतः कटो भवता।

भाववाच्य में - शयितं भवता।

(3) खलर्थक प्रत्यय - कर्मवाच्य में - ईषत्करः कटो भवता।

भाववाच्य में - ईषदाढ्यभवं भवता।

इन उदाहरणों में भाववाच्य और कर्मवाच्य में कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। फलतः 'कर्ता' क्रिया के द्वारा अनुक्त होने से तृतीया विभक्ति में और कर्म उक्त होने से प्रथमा विभक्ति में प्रयुक्त हुए हैं। इसीलिए तीनों उदाहरण में 'कटः' जो कि कर्म है उसमें 'प्रथमा' और 'भवता' पद में तृतीया विभक्ति हुई है।

6. तव्यत् तव्यानीयर – 3.1.96 धातोरेते प्रत्ययाः स्युः । एधितव्यम्, एधनीयंत्वया। भावे ओत्सर्गिकमेक वचनं क्लीबत्वञ्च। चेतव्यःचयनीयो व धर्मस्त्वया।

सूत्रार्थ– ये तव्यत्,तव्य और अनीयर प्रत्यय धातु से हों। भाव में सामान्य एक वचन और नपुंसक लिंग होता है। जैसे - एधितव्यम्, एधनीयम् त्वया। यहाँ भाव में एक वचन और नपुंसक लिंग है। तव्यत् का अन्त्य तकार इत्संज्ञक है, अतः तित् होने से यह 'तित्स्वरितम्' सूत्र से स्वरित हो जाता है। तव्य और तव्यत् में यही अन्तर है। वैसे रूप दोनों में समान बनते हैं। अनीयर् में भी रकार इत्संज्ञक है। 'कृत्याः' अधिकार में होने से ये प्रत्यय कृत्य संज्ञक है। अतः 'तयोरेव.' परिभाषा से ये प्रत्यय सकर्मक धातुओं से कर्म में है और अकर्मक धातुओं से भाव में होते हैं।

उदाहरण के लिए – 'एध्' धातु अकर्मक है अतः इससे भाव में तव्यत्, तव्य और अनीयर्,, हांकर 'एध्-तव्य' और 'एध् अनीय' रूप बनते हैं।

7. एधितव्यम्– (बढ़ने योग्य)– यहाँ एध् धातु से भाव में 'तव्यत्तव्यानीयरः' सूत्र द्वारा तव्यत् प्रतयय होकर 'एध्– तव्य' रूप बनने पर 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से वलादि आर्धधातुक तव्य को इट् का आगम प्राप्त होता है। तब 'एध-इ-तव्य' रूप बनता है। इस स्थिति में 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से 'एधितव्य' की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। तदनन्तर 'स्वौजस.' सूत्र द्वारा प्रथमा एक वचन में 'सु' विभक्ति प्रत्यय लगता है किन्तु नपुंसक लिंग होने से 'स्वमोर्नपुंसकात्' से 'सु' और अम् का लोप तथा अन्त्य अकार के स्थान पर अतोऽम् से 'अम्' आदेश होकर अमिपूर्वः से एकादेश होकर नपुंसक लिंग प्रथमा विभक्ति एक वचन में एधितव्यम् रूप सिद्ध होता है।

एधितव्यम् – एध्- तव्यत् (धातोः, कृत्याः, तयोरेव., तव्यत्तव्यानीयरः)

एध्- तव्यत् (हलन्त्यम्, तस्यलोपः)

एध्- तव्य (आर्धधातुकस्येड्वलादेः)

एध्- इट् तव्य	(हलन्त्यम्, तस्यलोपः)
एध्- इ- तव्य	(कृत्तद्धितसमासाश्च)
एधितव्य-सु-	(स्वौजस.)
एधितव्य -सु-	(स्वमोर्नुपुंसकात्)
एधितव्य - अम्-	(अतोऽम्, अमिपूर्वः)
एधितव्यम् -	नपुंलिंग, प्रथमा एकवचन।
एधनीयम्-	(बढ़ना चाहिए)
एध्-अनीयर्	(तव्यत्तव्यानीयरः)
एध्-अनीयर्	(हल., तस्य.)
एध्-अनीय	(कृत्तद्धित.)
एधनीय- सु	(स्वौजस.)
एधनीय सु	(स्वमोर्नपुंसकात्)
एधनीय - अम्	(अतोऽम्)
एधनीयम्	(अमिपूर्वः)
एधनीयम्	नपुं. प्र. एकवचन

इसी प्रकार चेतव्यः चयनीयो वा धर्मस्त्वया में कर्मवाच्य होने से सकर्मक 'चि' धातु से तव्य और 'अनीयर् प्रत्यय होकर 'चि-तव्य' और 'चि-अनीय' रूप बनते हैं। तब 'सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः' से गुण आदेश होकर 'च् ए तव्य' = 'चेतव्य और 'च् ए अनीय' = चे अनीय' रूप बनेंगे। यहाँ 'चे अनीय' में पुनः 'एचोऽयवायावः ' से 'अय्' आदेश होकर 'च-अय्-अनीय' = 'चयनीय' रूप बनता है। तब प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य होकर कर्मवाच्य पुल्लिंग एकवचन में क्रमशः 'चेतव्यः' और चयनीयः' रूप बनते हैं।

चेतव्यः – (सञ्चय करने योग्य)

चि-तव्य	(धातोः, तयोरेव. तव्यत्तव्यानी.)
चि- तव्य	(सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः)
च् - ए- तव्य	(कृत्तद्धितसमासाश्च)
चेतव्य - सु	(स्वौजस.)
चेतव्य -सु-	(उपदेशेऽजनुनासिक इत्, तस्य.)

चेतव्य - स् (ससजुषोरुः)

चेतव्य- रु (उपदेशे. तस्य.)

चेतव्य- र् (खरवसानयोर्विसर्जनीयः)

चेतव्यः - पु.प्र. एकवचन (कर्मवाच्य में)।

चयनीयः – (सञ्चय करना चाहिए)

चि- अनीयर् (तव्यत्तव्यानीयरः)

चि- अनीयर् (हल., तस्य.)

चि- अनीय (सार्वधातुका.)

च्- -ए- अनीय (एचोऽयवायावः)

च्-अय्-अनीय (कृत्तद्धित.)

चयनीय- सु (स्वौजस.)

चयनीय -सु (उपदेशे., तस्य.)

चयनीय -स् (ससजुषोरुः)

चयनीय- रु (उपदेशे. तस्य.)

चयनीय - र् (खरवसानयो.)

चयनीयः - पु. प्र. एकवचन (कर्मवाच्य)।

वार्तिक – केलिमर उपसंख्यानम्- पचेलिमा माषाः पक्तव्या इत्यर्थः। भिदेलिमाः सरलाः, भेत्तव्या इत्यर्थः। कर्मणि प्रत्ययः।

वार्तिकार्थ– 'केलिमर्' प्रत्यय का भी उपसंख्यान करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि तव्यत् आदि की भाँति 'केलिमर्' प्रत्यय भी सकर्मक धातुओं से कर्म में और अकर्मक धातुओं से भाव में होता है। केलिमर् में रकार की 'हलन्त्यम्' से और ककार की लशक्वतद्धिते से इत्संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' से लोप हो जाने पर केवल 'एलिम' ही शेष रह जाता है। केलिमर् प्रत्यय भी तव्यत् के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।

उदाहरण के लिए- 'पचेलिमा माषाः' में सकर्मक 'पच्' धातु से 'एलिम' प्रत्यय हुआ। कर्म 'माषाः' के अनुसार ही पुल्लिंग प्रथमा बहुवचन में 'पच्-एलिम्' = पचेलिम का पचेलिमाः रूप बनता है।

पचेलिमाः (पकाने योग्य)

पच्- केलिमर् (धातोः, तव्यत्तव्य., केलिमर.)

पच्- केलिमर्	(हल., लशक्व., तस्यलोपः)
पच- एलिम्	(कृत्तद्धितसमासाश्च)
पचेलिम् - जस्	(स्वौजस.)
पचेलिम -जस्	(चुटू, तस्यलोपः)
पचेलिम् - अस्	(प्रथमयोः पूर्व सवर्णः)
पचेलिमास्	(ससजुषोरुः)
पचेलिमा - रु	(उपदेशे., तस्य.)
पचेलिमा - र्	(खरवसानयोर्विसर्जनीयः)

पचेलिमाः पु. प्र. बहुवचन।

7. कृत्यल्युटो बहुलम् – 3.3.113 क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव। विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति। स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः।

सूत्रार्थ – कृत्य प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुल (चार प्रकार) प्रकार से होते हैं। (1) कहीं अप्राप्त में प्राप्त हो जाना। (2) कहीं प्राप्त में भी अप्राप्त होना। (3) कहीं विकल्प से प्राप्त होना और (4) कहीं इन तीनों से भिन्न अर्थात् विकल्प में भी नित्य ही प्राप्त हो जाना। जैसे (अवङस्फोटायनस्य, गवाक्षः) इस प्रकार अनेक तरह से सूत्रों का विधान समझकर उनके चार भेद कहे गए हैं।

तात्पर्य यह है कि कृत्य और ल्युट् प्रत्यय भाव और कर्म में तो होते ही हैं, इसके साथ ही साथ अन्य कारकों में भी हो सकते हैं।

उदाहरण के लिए – स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम् (जिससे स्नान किया जावे उसे स्नानीय कहते हैं, वह चूर्ण होता है)। अर्थ में 'स्ना' धातु से करण अर्थ में प्रस्तुत सूत्र से कृत्य प्रत्यय अनीयर् होकर 'स्ना-अनीय' रूप बनता है। तब 'अकः सवर्णे, दीर्घः' से दीर्घादेश होकर 'स्न् आ नीय' = स्नानीय रूप बनने पर प्रातिपदित संज्ञक होकर नपुंसक लिंग प्र. एकवचन में 'स्नानीयम्' रूप सिद्ध होता है।

स्नानीयमः- (साबुन या उबटन)

स्ना- अनीयर्	(तव्यत्तव्या., कृत्यल्युटो.)
स्ना- अनीयर्	(हलन्त्यम्, तस्यलोपः)
स्ना - अनीय	(अकः सवर्णे दीर्घः)
स्न्- आ- नीय	(कृत्तद्धिसमासाश्च)

स्नानीय- सु	(स्वौजस.)
स्नानीय - सु	(स्वमोर्नपुंसकात्)
स्नानीय - अम्	(अतोऽम्)
स्नानीय - अम्	(अमिपूर्वः)
स्नानीयम् - नपु. प्र. एकवचन	

दानीयः (विप्रः)- जिसे दान दिया जाता है, उसे दानीय कहते हैं, वह विप्र होता है। (दीयतेऽस्मै - दानीयः विप्रः)

दानीयः (दान देने योग्य अर्थात् ब्राह्मण)

दा- अनीयर्	(तयो., तव्यत्तव्य., कृत्यल्युटो.)
दा- अनीयर्	(हलन्त्यम्, तस्यलोपः)
दा - अनीय	(अकः सवर्णे दीर्घः)
द् - आ - नीय	(कृत्तद्धितसमासाश्च)
दानीय - सु	(स्वौजस.)
दानीय - सु	(उपदेशे. तस्य.)
दानीय - सु	(ससजुषोरुः)
दानीय - रु	(उप. तस्य.)
दानीय - र्	(खरवसानयो.)
दानीयः -	पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

8. अचोयत्- 3.1.97 अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात्। चेयम्।

सूत्रार्थ – अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है। यत् में अन्त्य तकार इत्संज्ञक है। अतः केवल 'य' ही शेष रहता है।

उदाहरण के लिए – 'चि' धातु इकारान्त अजन्त है। अतः प्रकृत सूत्र से उसके बाद 'यत् ' होकर - 'चि-य' रूप बनता है। तब आर्धधातुक 'यत्' परे होने के कारण 'सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः' से गुण एकार होकर 'च् - ए- य' = 'चेय' रूप बनेगा। इस स्थिति में 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से 'चेय' की प्रातिपदिक संज्ञा होने पर नपुंसक लिंग प्रथमा एकवचन में 'चेयम्' रूप बनता है।

चेयम् - (चुनने योग्य)

चि- यत् (धातोः, अचोयत्)

चि- यत् (हलन्त्यम्, तस्यलोपः)

चि - य (सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः)

च् - ए- य (कृत्तद्धित.)

चेय - सु (स्वौजस.)

चेय - सु (स्वमोर्नपुंसकात्)

चेय - अम् (अतोऽम्)

चेयम् - (अमिपूर्वः)

चेयम् - नपुं. प्र. एकवचन।

9. ईद्यति- 6.4.65 यति परे आत् ईत् स्यात्। देयम्। ग्लेयम्

अनुवृत्ति - यहाँ 'आतो लोप इटिच' से आतः' तथा अधिकार सूत्र अंगस्य की अनुवृत्ति की गई है। आतः अंगस्य का विशेषण है अतः उसमें तदन्त विधि हो जाती है।

सूत्रार्थ – 'यत्' परे होने पर आकारान्त अंग के स्थान पर ईकार हो जाता है।

उदाहरण के लिए - दा धातु से दान करने योग्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय परे होने के कारण प्रकृत सूत्र से 'दा' के आकार के स्थान पर ईकार होकर 'द्-ई-य' = 'दीय' रूप बनता है। तब आर्धधातुक यत् परे होने के कारण सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः से ईकार के स्थान पर एकार होकर - 'देय' रूप बनता है। पश्चात् प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य सम्पन्न होकर नपुं. प्र. एकवचन में 'देयम्' रूप सिद्ध होता है।

देयम् (देने योग्य)

दा - यत् (आतोलोप., अंगस्य, अचोयत्)

दा - यत् (ईद्यति)

दी - यत् (हल., तस्य,)

दी - य (सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः)

द् -ए - य (कृत्तद्धित.)

देय - सु (स्वौजस.)

देय - सु (स्वमोर्नपुंसकात्)

देय - अम् (अतोऽम्)

देय - अम् (अमिपूर्वः)

देयम्- नपुं. प्र. एकवचन।

ग्लेयम् (ग्लानि करने योग्य)

ग्लै - यत्	(अचोयत्)
ग्लै - यत्	(हल., तस्य.)
ग्लै - य	(आदेच् उपदेशेऽशिति)
ग्ला - य	(ईद्यति)
ग्ल - इ- य	(सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः)
ग्ल - ए -य	कृत्तद्धित.)
ग्लेय - सु	(स्वौजस.)
ग्लेय - सु	(स्वमोर्न.)
ग्लेय - अम्	(अतोऽम्)
ग्लेय - अम्	(अमिपूर्व)

ग्लेयम् - नपुं. प्र. एकवचन।

10. पोरदुपधात् - 3.1.98 पवर्गान्तादुपधात् यत स्यात्। ण्यतोऽपवादः। शप्यम्। लभ्यम्।

सूत्रार्थ – पवर्गान्त अत् उपधा वाले धातु से यत् प्रत्यय होता है। यह यत् प्रत्यय 'ऋहलोर्ण्यत्' से प्राप्त ण्यत् प्रत्यय का बाधक है।

अनुवृत्ति - यहाँ 'धातोः' का अधिकार प्राप्त है तथा 'अचोयत्' से यत की अनुवृत्ति की गई है।

उदाहरण - शप् (शाप देना) धातु पकारान्त है, अतः पवर्गान्त हुई। साथ ही उसकी उपधा में ह्रस्व अकार भी है। अतः प्रकृत सूत्र से 'यत्' होकर 'श-प्-य' = शप्य रूप बनने पर प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति कार्य सम्पन्न होकर नपुंसकलिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'शप्यम् रूप सिद्ध होता है।

शप्यम्- (शाप देने योग्य)

शप् - यत्	(धातोः, अचोयत्, पोरदुपधात्)
शप् - यत्	(हलन्त्यम्, तस्यलोपः)
शप् - य	(कृत्तद्धित.)

शप्य - सु (स्वौजस.)

शप्य - सु (स्वमोर्नपुंसकात्)

शप्य -अम् (अतोऽम्)

शप्यम् - (अमिपूर्वः)

शप्यम्- नपुं. प्र. एकवचन।

लभ्यम्- (पाने लायक)

लभ् - यत् (धातोः, अचोयत्, पोरदुपधात्)

लभ् - यत् (हल., तस्य.)

लभ् - य (कृत्तद्धित.)

लभ्य - सु (स्वौजस.)

लभ्य - सु (स्वमोर्नपुं.)

लभ्य- अम् (अतोऽम्)

लभ्यम् (अमिपूर्वः)

लभ्यम् - नपुं. प्र. एकवचन।

11. एतिस्तुशास्वृदृजुषःक्यप्- 3.1.109 एभ्यः क्यप् स्यात्।

सूत्रार्थ – इन 6 धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है। अभिप्रायः यह है कि - इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष् इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है।

नोट– यहाँ इण् (जाना), स्तु (स्तुति करना), वृ (वरण करना) और दृ (आदर करना)– इन चार धातुओं से 'अचोयत्' से यत् प्रत्यय प्राप्त था और शास् (शासन करना) तथा जुष् (प्रसन्न होना) इन दो धातुओं से 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था, किन्तु प्रकृत सूत्र से, इन दोनों सूत्रों का बाध होकर इन छः धातुओं से क्यप् प्रत्यय प्राप्त हुआ है। क्यप् के पकार की हलन्त्यम् से और ककार की लशक्वतद्धिते से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है केवल 'य' ही शेष बचता है।

उदाहरण – इण् धातु से प्रकृत सूत्र द्वारा 'क्यप्' होकर 'इ - य' रूप बनेगा। ऐसी स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

12. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्- 6.1.71 इत्यः। स्तुत्यः शासु अनुशिष्टो।

सूत्रार्थ – यदि कृत् प्रत्यय का पकार इत्संज्ञक हो तो उसके परे होने पर ह्रस्व का अवयव तुक् होता है। तुक् में 'उक्' इत्संज्ञक है अतः केवल 'त्' ही शेष रहता है।

कित् होने के कारण 'आद्यन्तौटकितो परिभाषा से यह 'ह्रस्व' का अन्तावयव बनता है। उदाहरण के लिए - 'इ - य' में क्यप् प्रत्यय कृत् है और पित् भी है। अतः उसके परे होने के कारण प्रकृत् सूत्र से ह्रस्व 'इ' को तुक् की प्राप्ति होकर 'इ - त् - य' ='इत्य' रूप बनता है। तब प्रातिपदिक संज्ञा और विभक्ति प्रत्यय 'सु' लगकर 'इत्यः' पु.प्र. एकवचन में रूप सिद्ध होता है।

इत्यः (जाने योग्य)		स्तुत्यः-(स्तुति करने योग्य)
इण् - क्यप्	(एतिस्तु.)	स्तु - क्यप्
इण् - क्यप्	(हल. तस्य.)	
इ - क्यप्	(लशक्व., हलन्त्यम्, तस्यलोपः)	स्तु - क्यप्
इ - य	(ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्, आद्यन्तौटकितो)	स्तु - य
इ - तुक् - य	(उपदेशे., हल., तस्यलोपः)	स्तु - तुक् -य
इ - त् - य	(कृत्तद्धित.)	स्तु - त् -य
इत्य - सु	(स्वौजस.)	स्तुत्य - सु
इत्य - सु	(उपदेशेश. तस्य.)	स्तुत्य - सु
इत्य -स्	(ससुजषोरुः उप. तस्य.)	स्तुत्य - स्
इत्य - र्	(खरवसानयोर्विसर्जनीयः)	स्तुत्य - र्
इत्यः - पु. प्र. एकवचन।		स्तुत्यः पु.प्र. एकवचन।

13. शासइदङ्हलोः 6.4.34 शास उपधायाः इत्स्यादङि हलादौक्ङिति। शिष्यः। वृत्यः आदृत्यः।

अनुवृत्ति - 'अनिदितां हलउपधायाः क्ङिति' से उपधायाः और क्ङिति की अनुवृत्ति की गई है। इसी प्रकार एति. से क्यप् प्रत्यय का ग्रहण किया गया है।

सूत्रार्थ- शास् धातु की उपधा को ह्रस्य इकार होता है यदि अङ और हलादि कित् ङित प्रत्यय उसके बाद में हो तो। यहाँ शास धातु की उपधा शकारोत्तरवर्ती आकार है। अतः उसी के स्थान पर इकार आदेश होता है। उदाहरण के लिए 'एतिस्तुशास.' सूत्र से शास धातु के बाद 'क्यप्' प्रत्यय होकर 'शास्-य' रूप बनता है। यहाँ क्यप् की इत्संज्ञा होने से 'य' कित् है और आदि में यकार होने से हलादि भी है। अतः 'क्यप्' के परे रहते प्रकृत सूत्र से 'शास्' धातु की उपधा को 'इंकार' होकर 'श् इ स् - य' रूप बनने पर 'शासिवसिघसीनां च' से सकार के स्थान पर षकारादेश होकर 'श् - इ - ष्य' = शिष्य प्रातिपदिक बनता है। तब विभक्ति कार्य होकर पुल्लिंग प्रथमा एक. में शिष्यः रूप सिद्ध होता है।

शिष्यः (शिक्षा देने योग्य अर्थात् छात्र)
शास्- क्यप् (एतिस्तु.)
शास् - क्यप् (हल., लशक्व. तस्य.)
शास- य (शासइदङ्. अनिदितां.)
श् - इ- स्-य (शासिवसि.)
श्-इ-ष्-य (कृत्तद्धित.)
शिष्य -सु (स्वौजस.)
शिष्य - सु (उप. तस्य.)
शिष्य - स् (ससजुषोरूः)
शिष्य -रु (उप. तस्य,)
शिष्य - र् (खरवसानयो.)
शिष्यः - पु. प्र. एकवचन।

वृत्यः- (वर्तने योग्य)
वृ- क्यप् (एतिस्तुशास.)
वृ- क्यप् (हल.लशक्व. तस्यलोपः)
वृ य (ह्रस्वस्यपिति.)
वृ-तुक्-य (हल., उपदेशे, तस्य.)
वृ -त् -य (कृत्तद्धि.)
वृत्य - सु (स्वौजस.)
वृत्य- सु (उप. तस्य., ससजुषो.)
वृत्य - रु (उप. तस्य.)
वृत्य - र् (खरवसान.)
वृत्यः पु. प्र. एकवचन।

आदृत्यः (आदर के योग्य)
आ-दृ-क्यप् (एतिस्तु.)
आ-दृ-क्यप् (लशक्व., हल., तस्य.)
आ-दृ-य (ह्रस्वस्यपिति.)
आ-दृ-तुक्-य (हलन्त्यम्, उपदेशे, तस्य.)
आ-दृ-त्-य (कृत्तद्धित.)
आदृत्य - सु (स्वौजस.)
आदृत्य - सु (उपदेशे., तस्य.)
आदृत्य - स् (ससजुषोरुः)
आदृत्य - रु (उप., तस्य.)
आदृत्य - र् (खरवसान.)
आदृत्यः - पु. प्र. एकवचन।

जुष्यः (सेवनीय)
जुस् - क्यप् (एतिस्तुशास.)
जुष - क्यप् (लश., हल., तस्य.)
जुष् - य (कृत्तद्धित.)
जुष्य- सु (स्वौजस.)
जुष्य- सु (उपदेशे. तस्य.)
जुष्य - स् (ससजुषो.)
जुष्य - रु (उप. तस्य.)
जुष्य - र् (खरवसान)
जुष्यः पु. प्र. एकवचन।

नोट– यहाँ जुष्यः में एति. सूत्र द्वारा जुष् धातु से क्यप् प्रत्यय हुआ है। क्यप् के कित् होने से उसके परे रहते जुष् के लघूपध का जो कि पुगन्तलघू. से प्राप्त गुण था उसका निषेध हो गया इसीलिए जुष्यः रूप ही बनेगा- जोष्य : नहीं।

14. मृजेर्विभाषा- 6.1.113 मृजेः क्यब्वा स्यात्। मृज्यः।

सूत्रार्थ – मृज् धातु के साथ क्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है। मृज् (साफ करना) धातु हलन्त है अतः उसे 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्राप्त था किन्तु मृजेर्विभाषा सूत्र से उसका विकल्प कर दिया। यहाँ भी कित् होने से पुगन्त. से प्राप्त गुण का निषेध हो गया है।

मृज्यः (साफ करने योग्य)

मृज् - ण्यत्	(ऋहलोर्ण्यत्)
मृज् - ण्यत्	(मृजेर्विभाषा, एतिस्तु.)
मृज् - क्यप्	(लश., हल., तस्य.)
मृज् - य	(कृत्तद्धित.)
मृज्य - सु	(स्वौजस., उपदेशे., तस्य.)
मृज्य - स्	(ससजुषोरुः)
मृज्य - रुः	(उप. तस्य.)
मृज्य - र्	(खरवसानयो.)

मृज्यः - पु. प्र. एकवचन।

15. ऋहलोर्ण्यत् - 3.1.124 ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् स्यात्। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्।

अनुवृत्ति – इसके स्पष्टीकरण के लिए अधिकार सूत्र धातोः की अनुवृत्ति की गई है। सूत्रस्थ 'ऋ' और 'हल्' धातु के विशेषण हैं, अतः उनमें तदन्त विधि हो जाती है।

सूत्रार्थ – 'ऋवर्णान्त और हलन्त धातु (जिसके अन्त में कोई व्यंजन वर्ण हो) से 'ण्यत्' प्रत्यय होता है। ण्यत् में णकार की 'चुटू' से और 'तकार' की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा होकर 'तस्यलोपः' से लोप हो जाता है। केवल 'य' ही शेष बच जाता है।

उदाहरणार्थ – कार्यम में 'कृ' धातु ऋवर्णान्त है, अतः उससे ण्यत् प्रत्यय होकर 'कृत्य' रूप बनता है। इस स्थिति में 'णित्' 'ण्यत्' परे होने के कारण 'आचोञ्णिति' से कृ के ऋकार के स्थान पर वृद्धि 'आर' होकर - 'क् - आर् - य' रूप बनने पर प्रातिपदिक संज्ञा होकर नपुंसक प्रथमा एकवचन में कार्यम् रूप सिद्ध होता है।

कार्यम्- (कर्तव्य)	हार्यम्- (हरण करने योग्य)
कृ - ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत्)	हृ - ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत्)
कृ - ण्यत् (चुटू. हल., तस्य.)	हृ- ण्यत् (चुटू. हल., तस्य.)

कृ - य (अचोञ्णिति, उरण.)	हृ- य
क् - आर् -य (कृत्तद्धित.)	ह्- आर् -य
कार्य - सु (स्वौजस.)	हार्य - सु
कार्य - सु (स्वमोर्नपुंसकात्)	हार्य - सु
कार्य - अम् (अतोऽम्)	हार्य - अम्
कार्य - अम् (अमिपूर्वः)	हार्य - अम्
कार्यम् - न पु. प्र. एकवचन।	हार्यम् न.पु. प्र. एकवचन।

इसी प्रकार धृ (धारण करना) से धार्यम् रूप बनता है। क्यप् के अभाव में हलन्त होने के कारण 'मृज्' धातु से ण्यत् प्रत्यय होकर 'मृज्य' रूप बनता है इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होंगा।

16. चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे।

सूत्रार्थ – चकार और जकार को कुत्व होता है, घित् और ण्यत् प्रत्यय परे रहते हैं। सूत्रस्थ पद - 'घिण् घित् के तकार को 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिकोवा' सूत्र से अनुनासिक णकार होने से बना है।

मृजेर्विभाषा सूत्र से जब क्यप् की प्राप्ति नहीं हुई तब उस पक्ष में हलन्त होने के कारण ण्यत् प्रत्यय हुआ है। ण्यत् प्रत्यय परे होने के कारण यह सूत्र जकार को गकार कर देता है। अभिप्राय यह है कि घित् या ण्यत् परे रहने पर (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (कु) कवर्ग आदेश होता है। 17 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा से चकार के स्थान में कवर्ग का ककार और जकार के स्थान पर कवर्ग का गकार आदेश ही होगा। उदाहरण के लिए मृज् धातु में ण्यत् (य) परे होने के कारण मृज् के जकार के स्थान पर गकार होकर 'मृग्य' रूप बनता है इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

17. मृजेर्वृदिधः - 7.2.114 मृजेरिकोवृद्धिः सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः। मार्ग्यः।

सूत्रार्थ - मृज् धातु के इक् को वृद्धि हो सार्वधातुकार्धधातुक प्रत्यय परे रहते। अभिप्राय यह है कि (मृजेः) मृज् की वृद्धि होती है 'इको गुणवृद्धी' 1.1.3 परिभाषा से मृज् के ऋकार के स्थान पर वृद्धि आर् होती है।

उदाहरण के लिए - मृग्य' में 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से मृग्, मृज् का ही रूप है। अतः प्रकृत सूत्र मृजेर्वृद्धिः' से ऋकार के स्थान पर वृद्धि आर् होकर 'म्-आर्-ग्-य'= 'मार्ग्य' रूप बनता है तब प्रातिपदिक संज्ञा होकर पु.प्र. एकवचन में मार्ग्यः रूप सिद्ध होता है।

मार्ग्यः (शोधनीय)

मृज् - ण्यत्	(ऋहलोर्ण्यत्)
मृज् - ण्यत्	(चुटू. हल., तस्य.)
मृज् - य	(चजोः कु. घिण्ण्यतोः, स्थानेऽन्तरतमः)
मृ-ग्-य	(मृजेर्वृद्धिः, इकोगुणवृद्धिः)
म्-आर्-ग्-य	(कृत्तद्धित.)
मार्ग्य - सु	(स्वौजस.)
मार्ग्य - सु	(उपदेशे. तस्य.)
मार्ग्य - स्	(ससजुषोरुः)
मार्ग्य -रु	(उप., तस्य.)
मार्ग्य - र्	(खरवसानयोर्विसर्जनीयः)

मार्ग्यः - पु. प्र. एकवचन।

18. भोज्यं भक्ष्ये - 7.3.69 भोग्यमन्यत्। इति कृत्य प्रक्रिया।

सूत्रार्थ - भक्ष्य - भक्षण करने अर्थ में 'भोज्य' रूप बनता है (भुज् धातु से)। अर्थात् ण्यत् प्रत्यय परे रहते 'चजोः कु. घिण्ण्यतोः' से प्राप्त कुत्व नहीं होता- यह सूत्र कुत्व के अभाव का निपातन करता है। जब भक्षण करने योग्य अर्थ नहीं होगा तब कुत्व होकर (चजोः कु. से) भोग्यम् (उपभोग) रूप बनेगा। इसका अर्थ होगा- 'उपभोग के योग्य'। यहाँ भुज् धातु हलन्त होने से उससे ण्यत् प्रत्यय हुआ है।

तात्पर्य यह है कि भुज् धातु के बाद ण्यत् आने पर 'चजोः कु.' से प्राप्त कुत्व नहीं होता जब भुज् धातु का अर्थ भक्षण या भोजन करना लिया जावे, उपभोग नहीं।

भोज्यम् — यहाँ भुज् धातु से 'भक्षण (भोजन) करने योग्य' अर्थ में ऋणलोर्ण्यत् सूत्र से ण्यत् प्रत्यय होकर 'भुज्-य' रूप बनने पर 'पुगन्तलघूपधस्य च' से 'भुज्' के उकार को गुण ओकार होकर 'भ्-ओ-ज्-य' रूप बनेगा इस स्थिति में 'चजोः कु.' से भोज् के जकार को गकार प्राप्त होता था किन्तु यहाँ भुज् धातु का भक्षण अर्थ होने के कारण प्रकृत सूत्र 'भोज्यं भक्ष्ये' से इसका निषेध हो जाता है और तब प्राति. संज्ञा होकर नपुं. प्र. एकवचन में भोज्यम् रूप सिद्ध होता है।

भोज्यम्- (भक्षण के योग्य)

भुज्- ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत्)

भुज् - ण्यत् (चुटू., हल., तस्य.)

भुज् - य (पुगन्तलघूपधस्य च)

भोज् - य (भोज्यं भक्ष्ये)

भोज् - य (कृत्तद्धित., स्वौजस.)

भोज्य - सु (स्वमोर्नपुंसकात्)

भोज्य -अम् (अतोऽम्)

भोज्य- अम् (अमिपूर्वः)

भोज्यम् - नपु. प्र. एकवचन।

भोज्यम् – किन्तु जब भुज् धातु का अर्थ, 'उपभोग करने योग्य' माना जावेगा तब 'भोज्यं भक्ष्ये' सूत्र लागू नहीं होगा और भुज् के जकार के स्थान पर 'चजोः कु.' से गकारादेश भी होगा।

भोग्यम्–(उपभोग करने योग्य या भोगने योग्य)

भुज- ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत्)

भुज् - ण्यत् (चुटू, हल., तस्य.)

भुज् -य (पुगन्तलघूपधस्य च.)

भोज् - य (चजोः कु. घिण्यतोः)

भोग् - य (कृत्तद्धित.)

भोग् - सु स्वौजस.)

भोग्य - सु (स्वमो.)

भोग्य - अम् (अतोऽम्)

भोग्य - अम् (अमिपूर्वः)

भोग्यम् - नपुं. प्र. एकवचन।

॥ इति कृत्य प्रक्रिया प्रसंगः॥

अथ पूर्वकृदन्तप्रकरणम्

1. ण्वुल्तृचौ- 3.1.133 धातोरेतौ स्तः । कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे।

अनुवृत्ति - धातु से ये दोनों प्रत्यय होते हैं। यहाँ स्पष्टार्थबोध के लिए- धातोः और कर्तरिकृत की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – कर्ता अर्थ में धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय लगते हैं। एक ही स्थिति में इन दोनों प्रत्ययों का प्रयोग होने से धातु के दो रूप बनते हैं। ण्वुल् में णकार की चुटू से और लकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा होकर 'तस्यलोपः' से लोप होने पर केवल 'वु' ही शेष बच जाता है। इसी प्रकार 'तृच्' में भी चकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' से लोप हो जाता है और 'तृ' ही शेष रहता है।

उदाहरण के लिए – कर्ता अर्थ में 'कृ' (करना) धातु से तृच् होकर 'कृ-तृ' रूप बनने पर सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः से 'कृ' के ऋकार के स्थान पर गुण 'अर्' होकर 'क्- अर् - तृ' = कर्तृ प्रातिपदिक बनता है। ऐसी स्थिति में पु.प्र. एकरूप बनाने के लिए स्वौजस. सूत्र से सु की अनुवृत्ति करनी होगी। किन्तु असम्बुद्धि सु परे होने के कारण कर्तृ के ऋकार् के स्थान पर 'ऋदुशनस्पुरूदंसोऽनेहसां च' सूत्र से 'अनङ् (अन)' आदेश होगा। ङि.च्च सूत्र से यह आदेश अन्त्य वर्ण ऋ के स्थान पर होगा तब रूप बनेगा - 'कर्त - अन् - सु'। इसके बाद 'अप् - तृन् - तृच्- स्वसृ - नप्तृ - नेष्टृ - त्वष्टृ - क्षतृ - होतृ - पोतृ - प्रशास्तृणाम्' सूत्र से - 'कर्तन् की उपधा दीर्घ होकर 'कर्त् - अनङ् - सु' रूप बनता है। अनन्तर 'हल्ङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' के स का लोप होने पर - 'कर्तान्' शेष रह जाता है। पुनः 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से कर्तान् के नकार का लोप हो जाता है और पु. प्र. एकवचन में कर्ता रूप सिद्ध होता है।

कर्ता- (कर्ता, करने वाला या स्रष्टा)

कृ - तृच् (धातोः, कर्तरि. ण्वुल्तृचौ)

कृ - तृच् (हल., तस्य.)

कृ. - तृ (सार्वधातुका.)

क् - अर् - तृ (कृत्तद्धित.)

कर्तृ - सु (सवौजस. उपदेशे. तस्य.)

कर्तृ - स् (ऋदुशनस्यपुरूदंसोऽनेहसां च ङिच्च)

कर्त् - अनङ् - स् (उप हल., तस्य.) अङ् इत्संज्ञक।

कर्त् - अन् - स् (अप्तृनतृच.)

कर्त् -आन् - स् (हल्ङ्याब्भ्यो.)

कर्तान् (न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य)

कर्ता- पु. प्र. एकवचन।

2. युवोरनाकौ - 7.1.1 'यु' 'वु' एतयोरनाकौस्तः। कारकः। कर्ता।

सूत्रार्थ – 'यु' और 'वु' के स्थान पर क्रमशः 'अन' और 'अक' आदेश होते हैं। 'यथासंख्यमनुदेशः समानम्' परिभाषा से 'यु' के स्थान पर 'अन' और 'वु' के स्थान पर अक होता है। 'अनेकाल्' होने से ये आदेश - 'अनेकाल् शित् - सर्वस्य' परिभाषा से सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होते हैं।

उदाहरणार्थ – कारक में कृ. धातु से कर्ता, अर्थ में 'ण्वुल् तृचौ' सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय होने पर प्रकृत सूत्र युवोरनाकौ' से वु के स्थान पर 'अक' आदेश हुआ है। णित् होने के कारण ण्वुल् परे रहते 'अचोञ्णिति' और उरणपरः से कृ के ऋकार के स्थान पर आर् वृद्धि होकर कारक शब्द बनता है। अनन्तर प्रादिपदिक संज्ञा होकर पु. प्रथमा एक. में 'कारकः' की सिद्धि होती है।

कारकः (करने वाला या बनाने वाला)

कृ - ण्वुल् (धातोः ण्वुलतृचौ)

कृ - ण्वुल् (चुटू, हलन्त्यम् तस्य.)

कृ - वु (युवोरनाकौ)

कृ - अक (अचोञ्णिति, उरणरपरः)

क् - आर् -अक (कृत्तद्धितसमासाश्च)

कारक - सु (स्वौजस.)

कारक - सु (उपदेशे. तस्य.)

कारक - स् (ससजुषो रुः)

कारक - रु (उपदेशे. तस्य.)

कारक - र् (खरवसानयोर्विसर्जनीयः)

कारक : - पु. प्र. एकवचन।

3. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः - 3.1.134 नन्द्यादेर्ल्यु, ग्रह्यादेर्णिनिः पचादेरच् स्यात्। नन्दयतीति नन्दनः। जनमर्दयतीति जनार्दनः। लवणः। ग्राही। स्थायी। मंत्री। पचादिराकृतिगणः।

सूत्रार्थ – नन्द् आदि, ग्रह् आदि और पचादि धातुओं से क्रमशः ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय होते हैं। यहाँ भी 'यथासंख्यमनुदेशः समानम्' परिभाषा से नन्द् आदि धातुओं से 'ल्यु'। ग्रह् आदि धातुओं से णिनि और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय लगते हैं।

उदाहरण के लिए – नन्द् धातु से प्रकृत सूत्र द्वारा 'ल्यु' प्रत्यय होकर 'नन्द्-ल्यु' बना। अनन्तर ल्यु के लकार की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा होकर तस्यलोपः से लोप हो जाता है और 'यु' शेष रहने पर 'नन्द्-यु' रूप बनता है। पश्चात 'युवोरनाको' से 'यु' को 'अन' आदेश होकर 'नन्द्-अन'- 'नन्दन' प्रातिपदिक बनता है। इस स्थिति में सुप् विभक्ति प्रत्यय लगकर पुः प्रथमा एक. में नन्दनः रूप सिद्ध होता है।

नन्दनः (आनन्द देने वाला)	जनार्दनः (लोगों को गति देने वाला, विष्णु)
नन्द् - ल्यु (नन्दिग्रहि.)	जन-अम्-अर्द्-ल्यु (नन्दिग्रहि.)
नन्द -ल्यु (लशक्व. तस्य.)	जन-अम्-अर्द्-ल्यु (लश. तस्य.)
नन्द - यु (युवोरनाकौ)	जन-अम्-अर्द्-यु (युवोरनाकौ)
नन्द् -अन (कृत्तद्धित.)	जन-अम्-अर्द्-अन (उपपदमतिङ)
नन्दन - सु (स्वौजस.)	जन-अम्-अर्द्-अन (कृत्तद्धित.)
नन्दन - सु (उपदेशे. तस्य.)	जन-अम्-अर्द्-अन (सुपोधातु.)
नन्दन -स् (ससजुषोरुः)	जन् -अर्द्-अन (अकः सवर्णे दीर्घः)
नन्दन -रु (उप. तस्य.)	जनार्दन- सु (स्वौ.)
नन्दन - र् (खरवसानयो.)	जनार्दन - सु (उप. तस्य.)
नन्दनः पु. प्र. एकवचन।	जर्नादन- स्- (ससजुषो.)
	जनार्दन-रु (उप., तस्यः)
	जनार्दन - र् (खरवसानयो.)
	जनार्दनः - पु. प्र. एकवचन।

इसी प्रकार लू धातु से ल्यु प्रत्यय होकर लवणः रूप बनता है। यह धातु भी नन्द् आदि गण की है।

लवण : (काटने वाला, नमक)
लू - ल्यु (नन्दिग्रहि.)
लू - ल्यु (लशक्व., तस्य.)
लू - यु (युवोरनाकौ)
लू - अन (सार्वधातुकार्ध.)
लो - अन (एचोऽयवायावः)
लव् - अन (निपातनात् णत्वम्)
लव - अण (कृत्तद्धित.)
लवण - सु (स्वौजस.)
लवण - सु
लवण - स् (ससजुषो रुः)
लवण - रु (उप तस्य.)
लवण - र (खरवसानयो.)
लवणः पु. प्र. एकवचन।

स्थायी : (स्थिर रहने वाला)
स्था -णिनि (नन्दिग्रहि.)
स्था- णिनि (चुटू, उप., तस्य.)
स्था- इन् (आतोयुक् चिण्कृतोः)
स्था-युक् 0इन (हल., उपदेशे., तस्य.)
स्था-य्-इन् (कृत्तद्धितः)
स्था-यिन्-सु (स्वौजस.)
स्था-यिन् सु (उपदेशे. तस्य.)
स्था-यिन् स् (सर्वनामस्थाने.)
(उप., तस्य.)
स्थायीन् - स् (हल्ङयाब्भ्यो.)
स्थायीन् (नलोपः प्राति.)
स्थायी - पु. प्र. एकवचन।

ग्राही- (ग्रहण करने वाला)
ग्रह् - णिनि (नन्दिग्रहित)
ग्रह् - णिनि (चुटू, उपदेशे., तस्य.)
ग्रह् - इन् (अत उपधायाः)
ग्राह् -इन (कृत्तद्धित.)
ग्राहिन् - सु (स्वौजस.)
ग्राहिन् -सु (उप., तस्य.)
ग्राहिन - स् (सर्वनामस्थानेचाऽसम्बुद्धौ)
ग्राहीन् - स् (हल्ङ्याब्भ्यो.)
गाहीन् - (नलोपः प्राति.)
ग्राही- पु.प्र. एकवचन।

मंत्री- (मंत्रणा या सलाह देने वाला)
मन्त्र् - णिनि (नन्दिग्रहि.)
मन्त्र् - णिनि (चुटू, उपदेशे., तस्य.)
मन्त्र् - णिनि (कृत्तद्धित.)
मन्त्रिन् - सु (स्वौजस.)
मन्त्रिन् - सु (उपदेशे. तस्य.)
मन्त्रिन् - स् (सर्वनाम.)
मन्त्रीन् - स् (हल्ङ्याब्भ्यो.)
मन्त्रीन् - स् (नलोपः प्राति.)
मंत्री - पु. प्र. एकवचन।

इसी प्रकार पच् धातु से वर्तमान सूत्र नन्दिग्रहि. द्वारा अच् प्रत्यय होकर पच्- अ रूप बनने पर प्रातिपदिक संज्ञा होकर पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में पचः रूप सिद्ध होता है। पच आदि आकृतिगण है पचति इति पचः । पच् + अच (पकाने वाला)। इस प्रकार के शब्द अच् प्रत्ययान्त होते हैं।

4. इगुपधज्ञाप्रीकिर : कः - 3.1.135 एभ्यः कः स्यात्। बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः।

सूत्रार्थ – जिन धातुओं की उपधा में इ, उ, ऋ, लृ (इक्) में से कोई वर्ण हो (इगुपध) इनमें तथा ज्ञा, प्री और कृ धातु से क प्रत्यय होता है। क प्रत्यय में अ शेष रहता है। यह प्रत्यय कित् है अतः इसके परे रहते 'क्ङिति च' से गुण-निषेध हो जाता है।

बुधः (पण्डित, जानकार)	ज्ञः (जानने वाला)
बुध्- -क (इगुपध ज्ञाप्री किरःकः)	ज्ञा - क (इगु.)
बुध्- क (लश., तस्य.)	ज्ञा - क (लशक्व., तस्य.)
बुध् - अ (कृत्तद्धित.)	ज्ञा - अ (आतोलोप.)
बुध - सु (स्वौजस.)	ज्ञ- अ (कृत्तद्धित.)
बुध - सु (उप. तस्य.)	ज्ञ - सु (स्वौजस.)
बुध- स् (ससजुषो रुः.)	ज्ञ - सु (उपदेशे., तस्य.)
बुध - रु (उप., तस्य.)	ज्ञ-स् (ससजुषो)
बुध - र् (खरवसानयो.)	ज्ञ- रू (उप., तस्य.)
बुध : - पु. प्र. एकवचन	ज्ञ- र् (खरवसानयो.)
	ज्ञः - पु. प्र. एकवचन।

प्रियः यहाँ प्री धातु से 'क' प्रत्यय होकर 'प्री-अ' रूप बनने पर अचिश्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ से प्री के ईकार के स्थान पर 'इयङ्' (इय्) आदेश होकर 'प्र-इय्-अ' = प्रिय प्रातिपदिक बनता है। तब सुप् आदि विभक्ति कार्य होकर पु. प्रथमा एक. में प्रियः रूप सिद्ध होता है।

प्रियः (प्यारा, तृप्त करने वाला)	किर : (बिखरने वाला)
प्री -क (इगुपध.)	कृ -क (इगुपध.)
प्री - क (लश. त.)	कृ - क (लश., तस्य.)
प्री - अ (अचिश्नुधातु.)	कृ - अ (ऋतइत्धातोः)

प्र- इयङ् - अ (उप., हल., तस्य.)	क् -इ - अ (उरण रपरः)
प्र् - इय - अ (कृत्तद्धितसमासाश्च)	क् - इ - र् - अ (कृत्तद्धित.)
प्रिय - सु (स्वौजस.)	किर - सु (स्वौजस.)
प्रिय - सु (उप., तस्य.)	किर - सु (उप., तस्य.)
प्रिय - स् (ससजुषो रुः)	किर- स् (ससजुषो रुः)
प्रिय -रु (उप., तस्य.)	किर - रु (उप. तस्य.)
प्रिय - र् (खरवसान.)	किर - र् (खरवसान.)
प्रियः - पु. प्र. एकवचन।	किरः - पु. प्र. एकवचन।

5. आतश्चोपसर्गे- 3.1.136 प्रज्ञः। सुग्लः।

सूत्रार्थ – उपसर्ग सहित आकारान्त धातु से क प्रत्यय होता है। इसके स्पष्टीकरण के लिए- 'इगुपध ज्ञा.' से 'क' की ओर अधिकार सूत्र धातोः की अनुवृत्ति की गई है। उदाहरण के लिए- प्रज्ञः में प्र-उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु से क प्रत्यय होकर - 'प्र-ज्ञा-अ' रूप बनने पर 'आतो लोप इटि च' से ज्ञा के आकार का लोप हो जाने पर 'प्र-ज्ञ्-अ' = 'प्रज्ञ' प्रातिपदिक बनता है। तब सुप् विभक्ति कार्य हो पु. प्र. एकवचन में 'प्रज्ञः रूप सिद्ध होता है।

प्रज्ञः (प्रकृष्टता से जानने वाला)	सुग्लः (भलीभाँति ग्लानि करने वाला)
प्र-ज्ञा- क (आतश्चोपसर्गे)	सु - ग्लै - क (इगुपध., धातोः, आतश्चो.)
प्र- ज्ञा - क (लश., तस्य.)	सु - ग्लै - क (लश. तस्य.)
प्र - ज्ञा- अ (आतोलोप.)	सु - ग्लै- अ (आदेच् उपदेशेऽशिति)
प्र -ज्ञ् -अ (कृत्तद्धित.)	सु - गल् -अ (कृत्तद्धित.)
प्रज्ञ - सु (स्वौजस.)	सु - ग्ल (स्वौजस.)
प्रज्ञ - सु (उप., तस्य.)	सुग्ल- सु (उप., तस्य.)
प्रज्ञ- स् (ससजुषो रुः)	सुग्ल- स् (ससजुषो.)
प्रज्ञ - रु (उप., तस्य.)	सुग्ल - रु (उप., तस्य.)
प्रज्ञ - र् (खरवसान.)	सुग्ल - र् (खरवसान.)
प्रज्ञः - पु. प्र. एकवचन।	सुग्लः - पु. प्र. एकवचन।

6. गेहे कः - 3.1.144 गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गृहम्।

अनुवृत्ति – यहाँ स्पष्टार्थ के लिए- विभाषाग्रहः से ग्रहः की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – गृह अर्थ में ग्रह धातु से 'क' प्रत्यय होता है। कृत् संज्ञक होने के कारण यह क प्रत्यय 'कर्तरि कृत' परिभाषा से कर्ता अर्थ में होता है।

उदाहरण के लिए - ग्रह् धातु से प्रकृत सूत्र द्वारा 'क' प्रत्यय होकर 'ग्रह्-अ' रूप बनने पर 'ग्रहिज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भुज्जतीनांङितिच' से ग्रह् के रकार को सम्प्रसारण 'ऋकार' तथा पूर्वरूप एकादेश होकर - 'गृह्-अ' = गृह प्रातिपदिक बनेगा। तब सुप् विभक्ति कार्य होकर नपु. प्र. एकवचन में गृहम् रूप सिद्ध होगा।

गृहम् - (घर)

ग्रह् - क (विभाषाग्रह, गेहे कः)	गृह - अम् (अतोऽम्)
ग्रह् - क (लंश., तस्यलोपः)	गृह - अम् (अमिपूर्वः)
ग्रह् - अ (ग्रहिज्या-वयि-व्यधि-वष्टि.)	गृहम् - नपुं. प्रथमा एकवचन।
गृह - अ (कृत्तद्धित.)	
गृह् - सु (स्वौजस.)	
गृह - सु (स्वमोर्नपुंसकात्)	

7. कर्मण्यण - 3.2.1 कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्। कुम्भं (करोतीतिकुम्भकारः।

सूत्रार्थ – कर्म उपपद रहते धातु से अण् प्रत्यय होता है। अण् में ण् की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा होने पर 'तस्यलोपः' से लोप हो जाता है केवल 'अ' ही शेष रहता है।

उदाहरण के लिए – कुम्भकारः में कुम्भ उपपद रहते 'कृ' धातु से अण् प्रत्यय होकर - 'कुम्भ-अम् कृ -अण्' रूप बनेगा। तब णित् प्रत्यय (अण्) परे होने के कारण 'अचोञ्णिति तथा उरणरपरः से कृ के ऋकार के स्थान पर वृद्धि आर् होकर - 'कुम्भ-अम्-क्-आर्-अ' रूप बना। यहाँ उपपदमतिङ' से समास संज्ञा और कृत्तद्धितसम. से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् अम् का लोप होने पर 'कुम्भ-कार् -अ' - कुम्भकार रूप बनता है तब पुं. प्र. एकवचन में सु आदि विभक्ति कार्य होकर कुम्भकारः सिद्ध होता है।

कुम्भकारः (घड़ा बनाने वाला)

कुम्भ-अम्-कृ-अण् (धातोः, कर्मण्यण्)	कुम्भकार- सु (स्वौ., उप, तस्य.)
कुम्भ-अम्-कृ-अण् (हल., तस्य.)	कुम्भकार-स (ससजुषो रुः)

कुम्भ-अम्-कृ-अ(अचोञ्णिति, उरणरपरः)	कुम्भकार - रु (उप. तस्य.)
कुम्भ-अम्-क्-आर्-अ (उपपदमतिङ्)	कुम्भकार - र् (खरवसानयो.)
कुम्भ-अम्-क्-आर्-अ (कृत्तद्धित.)	कुम्भकारः - पु.प्र.एकवचन।
कुम्भ-अम्-कार (सुपोधातु.)	

8. आतोऽनुपसर्गे कः - 3.2.3 आदन्ताद् धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे: कः स्यात्। अणोऽपवादः।

आतो लोपः। गोदः। धनदः। कम्बलदः। अनुपसर्गे किम्? गोसंदायः।

अनुवृत्ति – यहाँ 'कर्मण्यण्' से 'कर्मणि' और अधिकार सूत्र 'धातोः' से धातु की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – कर्म, उपपद रहते उपसर्ग रहित आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है। यहाँ सूत्रस्थ 'आतः' धातोः का विशेषण बनता है, अतः उसमें तदन्त विधि हो जाती है। यहाँ 'क' प्रत्यय कर्मण्यण् से प्राप्त अण् का अपवाद है।

उदाहरण के लिए – गो-अम् दा में कर्म (गो) उपसर्ग रहित है और 'दा' धातु भी आकारान्त है अतः प्रकृत सूत्र से 'क' प्रत्यय होकर - 'गो-अम्-दा-अ' रूप बनता है। तब 'आतो लोप इटि च' से दा के 'आ' का लोप हो जाता है और द् शेष बचने पर 'गो-अम्-'द्-अ' रूप बनता है तब उपपदमतिङ् से समास संज्ञा और कृत्त. से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् अम् का लोप होकर 'गोद' प्रातिपदिक से सु प्रत्यय करने पर गोदः पु.प्र. एकवचन में रूप सिद्ध होता है।

गोदः- (गाय देने वाला)

गो-अम्-दा-क (कर्म, धातो., आतो.)	गोद- सु (स्वौजस.)
गो-अम्-दा-क (लश.तस्य.)	गोद -सु (उप., तस्य.)
गो-अम्-दा-अ (आतोलोप.)	गोद-स् (ससजुषो.)
गो-अम्-द्-अ (उपपदमतिङ्)	गोद-रु (उप., तस्य.)
गो-अम्-द्-अ (कृत्तद्धित.)	गोद- र् (खरवसानयो.)
गो-अम्-द्-अ (सुपोधातुप्राति.)	गोदः - पु.प्र.एकवचन।

इसी प्रकार धन और कम्बल शब्द उपपद रहते अनुपसर्ग आकारान्त दा धातु से 'क' प्रत्यय का योग करने पर क्रमशः -धनदः और कम्बलदः रूप सिद्ध होते हैं।

किन्तु यदि धातु के पूर्व उपसर्ग होगा तो क प्रत्यय नहीं होगा। उदाहरण के लिए- 'गो-अम्-सं-दा' में 'दा' धातु के पहले 'सम्' उपसर्ग है अतः आकारान्त होने पर भी उस दा

से 'क' प्रत्यय नहीं होगा। इस अवस्था में कर्मण्यण् से प्राप्त अण् प्रत्यय ही होगा। तब रूप बनेगा 'गो-अम्-सम्-दा-अण्' पश्चात् आतो. से युक् आगम होकर समास संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा और सुप् अम् लोप होकर सुप् विभक्ति कार्य होकर पु.प्र. एकवचन में- गोसंदायः रूप सिद्ध होता है।

गोसंदायः (भलीभाँति गाय देने वाला)

गो-अम्-सम्-दा-अण् (कर्मण्यण्)

गो-अम्-सम्-दा-अण् (हल., तस्य.)

गो-अम्-सम्-दा-अ (मोऽनुस्वारः)

गो-अम्-सं-दा-अ (आतोयुक्चिणकृतोः)

गो-अम्-सं-दा-युक्-अ (हल., तस्य.)

गो-अम्-सं-दा-य्-अ (उपपदमतिङ)

गो-अम्-संदाय (कृत्तद्धित.)

गो-अम्-संदाय (सुपोधातुप्राति.)

गो-संदाय (स्वौजस.)

गोसंदायः - पु.प्र. एकवचन।

वार्तिक- मूलविभुजादिभ्यः कः - मूलानि विभुजतीति मूलविभुजोरथः। आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः। कुध्रः।

वार्तिकार्थ – मूलविभुज (जड़ों को तोड़ने वाला, रथ) आदि शब्दों से क प्रत्यय होता है। मूलविभुज आकृतिगण है, अतः इस प्रकार के शब्दों का पता आकृति देखकर लगाया जाता है।

उदाहरण के लिए – मूल उपपद रहते सोपसर्ग (वि) भुज् धातु से प्रकृत वार्तिक द्वारा- 'क' प्रत्यय होकर 'मूल विभुजः' रूप सिद्ध होता है।

मूलिविभुजः (जड़ों को कुचलने वाला, रथ)

मूल-शस्-वि-भुज्-क (मूलविभुजादिभ्यः कः)

मूल-शस्-वि-भुज्-क (लशक्व., तस्य.)

मूल-शस्-वि-भुज्-अ (उपपदमतिङ)

मूल-शस्-वि-भुज्-अ (कृत्तद्धित.)

मूल-शस्-वि-भुज्-अ (सुपोधातु.)

मूल-वि-भुज-सु (स्वौजस., उप., तस्य.)

मूलविभुज-स् (ससजुषोरुः)

मूलविभुज - रु (उप., तस्य.)

मूलविभुज - र् (खरवसानयो.)

महीध्रः (पृथ्वी को धारण करने वाला, पर्वत)

मही-अम्-धृ-क (मूलविभुज.)

मही-अम्-धृ-क (लश., तस्य.)

मही-अम्-धृ-अ (इकोयणचि)

मही-अम्-ध्र-अ (उपपदमतिङ्)

मही-अम्-ध्र-अ (कृत्तद्धित.)

मही-अम्-ध्र-अ (सुपोधातु.)

मही-ध्र-सु (स्वौ., उपदेशे., तस्य.)

महीध्र - स् (ससजुषो रूः,उप., तस्य.)

महीध्र - र् (खरवसानयो.)

मूलविभुजः पु. प्र. एकवचन। महीध्रः - पु. प्र. एकवचन।

नोट- इसी प्रकार कुध्रः (पर्वत) भी रूप सिद्ध होता है।

9. चरेष्टः 3.2.16 अधिकरणे उपपदे। कुरूचरः।

अनुवृत्ति – यहाँ स्पष्टार्थ के लिए - सुपिस्थः 3.2.4 से सुपि और 'अधिकरणे शेतेः 3.2.15' से अधिकरणे की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – अधिकरण कारक में सुबन्त उपपद रहते चर् (चलना) धातु से 'ट' प्रत्यय होता है। ट के टकार की चुटू से इत्संज्ञा होकर तस्यलोपः से लोप हो जाता है। इसमें 'अ' ही शेष बचता है। उदाहरण के लिए - 'कुरूषु चरति' (कुरू देश में विचरण करता है) इस विग्रह में 'कुरू-सुप्-चर्' से (अधिकरण अर्थ में) प्रकृत सूत्र द्वारा 'ट' प्रत्यय हुआ। तब रूप बना - कुरू-सुप्-चर्-अ (ट) पश्चात् समास संज्ञा, प्रातिपदिक और सु आदि विभक्ति कार्य होकर- कुरूचर: पु.प्र. एकवचन में।

कुरूचरः (कुरू देश में विचरण करने वाला)

कुरू-सुप्-चर्-ट (सुपि., अधि., चरेष्टः)
कुरू-सुप्-चर-ट (चुटू., तस्य.)
कुरू-सुप्-चर्-अ (उपपदमतिङ्)
कुरू-सुप्-चर्-अ (कृत्तद्धित.)
कुरू-सुप्-चर्-अ (सुपोधातु.)
कुरू-चर-सु (स्वौजस.,उप., तस्य.)
कुरूचर-स् (ससजुषोरुः,उप., तस्य.)
कुरूचर-र् (खरवसानयो.)
कुरूचरः- पु.प्र. एकवचन।

10. भिक्षासेना ऽऽदायेषु च 3.2.17 :- भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति ल्यबन्त- आदायचरः।
यहाँ स्पष्टार्थ के लिए - 'सुपिस्थः' और 'चरेष्टः' की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – सुबन्त, भिक्षा, सेना और आदाय, उपपद होने पर चर् धातु से 'ट' प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए - 'भिक्षा-अम्-चर्' में सुबन्त भिक्षा उपपद रहते चर् धातु से 'ट' (अ) प्रत्यय लगाने पर 'भिक्षा-अम्-चर्-अ' रूप बनेगा। अनन्तर सुप् लोप तथा समासादि संज्ञा होकर पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में भिक्षाचरः रूप सिद्ध होता है।

भिक्षाचरः- (भिक्षा लेने वाला, भिक्षुक)
भिक्षा-अम्-चर्-ट (सुपि.,चरेष्टः, भिक्षासेना.)
भिक्षा-अम्-चर्-ट (चुटू. तस्य.)
भिक्षा-अम्-चर्-अ (उपपदमातिङ.)

सेनाचरः (सेना में रहने वाला, सैनिक)
सेना-ङि-चर्-ट(सुपि.,चरेष्टः,भिक्षासेना.)
सेना-ङि-चर्-ट (चुटू., तस्य.)
सेना-ङि-चर्-अ (उपपदमतिङ.)

भिक्षा-अम्-चर्-अ (कृत्तद्धित., सुपो.)	सेना-ङि-चर्-अ (कृत्तद्धित.)
भिक्षा-चर-सु (स्वौ., उपदेशे, तस्य.)	सेना-ङि-चर्-अ (सुपोधातु.)
भिक्षा-चर-स् (ससजुषो रुः)	सेना-चर-सु (स्वौ., उपदेशे. तस्य.)
भिक्षा-चर-रु (उपदेशे., तस्य.)	सेना-चर-स् (ससजुषो रुः)
	सेना-चर-रु (उप., तस्य.)
भिक्षा-चर-र् (खरवसान.)	सेना -चर-र् (खरवसानयो.)
भिक्षाचरः - पुल्लिंग प्रथमा एकवचन।	सेनाचरः पु.प्र. एकवचन।
आदायचरः (लेकर घूमने वाला)	
आदाय-चर्-ट (चरेष्टः, भिक्षा.)	आदायचर-स् (ससजुषो रुः)
आदाय-चर्-ट (चुटू., तस्य.)	आदायचर -र् (खरवसान.)
आदाय-चर्-अ् (कृत्तद्धित.)	
आदायचर-सु (स्वौ., उप., तस्य.)	आदायचरः पु.प्र. एकवचन।

11. कृञो हेतु ताच्छील्यानुलोम्येषु:- 3.2.20 एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात्।

अनुवृत्ति- यहाँ चरेष्टः से 'ट' की अनुवृत्ति की गई है। सूत्रस्थ ताच्छील्य का अर्थ है- 'स्वभाव' और आनुलोम्य का अर्थ है - 'अनुकूलता'।

सूत्रार्थ– यदि हेतु स्वभाव या अनुकूलता द्योत्य हो तो कृ धातु से 'ट' प्रत्यय होता है। यहाँ भी कोई सुबन्त उपपद होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए - यशः करोति (यश करती है या यश का कारण = (विद्या) इस विग्रह में 'यशस्-अम्-कृ से हेतु अर्थ में 'ट' (अ) प्रत्यय होकर- यशस्-अम्-कृ-अ रूप बनेगा। तब 388 सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः से "कृ" के ऋकार के स्थान पर गुण "अर" होकर "यशस-अम्-क्-अर्-अ = यशस्-अम्-कर" रूप बनने पर उपपद समास और सुप् "अम्" लोप आदि होकर यशस्-कर् रूप बनता है। इस स्थिति में ससजुषो रुः से यशस् के सकार के स्थान पर रकार तथा खरवसान. से पुनः रकार के स्थान पर विसर्ग होकर यशः कर रूप बनेगा।

यहाँ ककार परे होने के कारण 'कुप्वोः क पौ च' से विसर्ग के स्थान पर जिह्वामूलीय प्राप्त होता है किन्तु अग्रिम सूत्र 'अतः-कृ-कमि.' से उसका बाध हो जाता है और विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होकर 'यशस्कर' रूप बनता है।

12. अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य- 8.3.46 - आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः स्यात्करोत्यादिषु परेषु। यशस्करी विद्या। श्राद्धकरः। वचनकरः।

यहाँ विसर्जनीयस्य सः तथा "नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' इन सूत्रों की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- कृ धातु, कमि (कम् धातु), कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णों के परे रहते अकार के बाद समास में अनुत्तरपदस्थ विसर्जनीय यदि अव्यय का न हो तो उसके स्थान पर नित्य सकार होता है।

उदाहरण के लिए – "यशः कर' में "कृ" धातु परे होने के कारण प्रकृत सूत्र से अकारोत्तरवर्ती विसर्ग के स्थान पर सकार होकर 'यशस्कर' रूप बनेगा तब स्त्रीलिंग में 1247 टिड्ढाणञ द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्कुरपः से ङीप् होकर यशस्कर+ई रूप बनने पर यचिभम् से यशस्कर की "भ" संज्ञा होकर यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर यशस्कर् + ई- यशस्करी स्त्री. प्रथमा विभक्ति एकवचन में रूप सिद्ध होता है।

यशस्करी - (यश देने वाली अर्थात् विद्या)	श्राद्धकरः (श्राद्ध करने वाला)
यशस्-अम्-कृ-ट (चरेष्ट, कृञोहेतु.)	श्राद्ध-अम् -कृ-ट (चरे., कृञो हेतु.)
यशस्-अम्-कृ-ट. (चुटू., तस्य.)	श्राद्ध-अम्-कृ.ट (चुटू, तस्य.)
यशस्-अम्-कृ-अ (सार्वधातुका.)	श्राद्ध-अम्-कृ-अ (सार्वधातु.)
यशस्-अम्-क्-अर्-अ (सुपोधातु)	श्राद्ध-अम्-क-अर्-अ (उपपद.)
यशस्-क्-अर्-अ (ससजुषो रुः)	श्राद्ध-अम्-कर्-अ (सुपोधातु.)
यश- र् -कर (खरवसानयो.)	श्राद्ध-कर (कृत्तद्धित.)
यशः - कर (अतः कृ. कमि.)	श्राद्ध - कर -सु (स्वौजस.)
यशस् -कर (कृत्तद्धित.)	श्राद्ध - कर-सु (उपदेशे., तस्य.)
यशस्-कर-ङीप् (टिड्ढाण.)	श्राद्ध-कर-स् (ससजुषो रुः)
यशस्-कर-ङीप् (लश., हल., तस्य.)	श्राद्ध-कर-रु (उपदेशे., तस्य.)
यशस्-कर-ई (यचिभम्)	श्राद्ध-कर-र् (खरवसानयो.)
यशस्-कर-ई (यस्येति च.)	श्राद्धकरः पुल्लिंग प्रथमा एकवचन।
यशस् -कर्-ई	

यशस्करी- स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

इसी प्रकार पुल्लिंग प्रथम विभक्ति एक वचन में वचनकर : (आज्ञाकारी) रूप भी सिद्ध होता है।

13. एजेः खश् - 3.2.28 ण्यन्तादेजेः खश् स्यात।

सूत्रार्थ – कर्म उपपद रहते ण्यन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए– जन-अम्-एजि में प्रकृत सूत्र से खश् प्रत्यय होकर 'जन-अम्-एजि-अ' रूप बनता है। तब तिङ-शित् सार्वधातुकम् से खश् (अ) की सार्वधातुक संज्ञा होने पर कर्तरिशप् से शप् होकर 'जन-अम्-एजि-अ-अ' रूप बनने पर "अतोगुणे' से पर रूप एकादेश होकर 'जन-अम्-एजि-अ' रूप सिद्ध होता है। पश्चात् सार्वधातुकाऽऽर्ध. से एजि के इकार को गुण एकार होकर 'जन-अम्-एज्-ए-अ' रूप बनने पर एचोऽयवायावः से एकार को 'अय' आदेश होकर 'जन-अम्-एज्-अय्-अ'- 'जन-अम्-एजय' रूप बनता है। इस स्थिति में उपपद समास और सुप् लोप होकर 'जन-एजय' शेष बचता है। तब अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

14. अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् - 6.3.67 अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात्खिदन्ते परे, न त्वव्ययस्य। शित्वाच्छबादिः। जनमेजयतीति जनमेजयः।

सूत्रार्थ – खिदन्त उत्तर पद परे होने पर अरूस (मर्म), द्विषत् (शत्रु) और अव्ययभिन्न अजन्त का अवयव मुम् होता है।

जनमेजयः (लोगों को कँपाने वाला या राजा)

जन-अम्-एजि-खश (कर्मण्यण्, एजेः खुश्)

जन-अम्-एजि-खश् (लश., हल.,तस्य.)

जन्-अम्-एजि-अ (तिङ्शित्सार्व)

जन्-अम्-एजि-अ-शप् (कर्तरिशप्)

जन-अम्-एजि-अ-शप् (लश., हल., तस्य.)

जन-अम्-एजि-अ-अ (अतोगुणे.)

जन-अम्-एजि-अ (सार्वधातु.)

जन-अम्-एज्-ए-अ (एचोऽयवायावः)

जन-अम्-एज्-अय्-अ (उपपदमतिङ)

जन्-अम्-एज-अय्-अ (सुपोधातुप्राति.)

जन-एज्-अय (अरुर्द्विषद.)

जन-मुम्-एजय(हल.,उपदेशे., तस्य.)

जन-म्-एजय (कृत्तद्धित.)

जनमेजय-सु (स्वौजस.)

जनमेजय-सु (उपदेशे., तस्य.)

जनमेजय-स् (ससजुषो रुः)

जनमेजय - रु (उपदेशे, तस्य.)

जनमेजय -र् (खरवसानयो.)

जनमेजयः पु.प्र. एकवचन।

15. प्रियवशेवदः खच् - 3.2.38 प्रियंवदः। वशंवदः।

सूत्रार्थ – प्रिय और वश कर्म उपपद रहते वद (बोलना) धातु से खच् प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए – वश-अम्-वद् से खच् प्रत्यय लगाने पर वश-अम्-वद्-खच् रूप बनता है। तब उपपद समास संज्ञा, सुप् लोप, मुम आगम आदि होकर वश-म्-वद्-अ रूप बनने पर मोऽनुस्वारः से मकार को अनुस्वार होकर पु. प्र. एकवचन में वशंवदः रूप सिद्ध होता है।

वशंवदः (आज्ञाकारी)	प्रियंवदः (प्रिय बोलने वाला)
वश-अम्-वद्-खच् (कर्मण्यण., प्रियवशे.)	प्रिय-अम्-वद्-खच् (कर्मण्यण., प्रियवशे.)
वश-अम्-वद्-खच् (ह.लश., तस्य.)	प्रिय-अम्-वद्-खच् (हल.,लश., तस्य.)
वश-अम्-वद्-अ (उपपदमति, कृत्तद्धित.)	प्रिय-अम्-वद्-अ (उपपमति) कृत्तद्धित.)
वश-अम्-वद्-अ (सुपोधातुप्राति.)	प्रिय-अम्-वद्-अ (सुपोधातु प्राति.)
वश-वद (अरुर्द्विषद.)	प्रिय-वद (अरुर्द्विषद.)
वश-मुम्-वद (हल., उपदेशे, तस्य.)	प्रिय-मुम्-वद- (हल.,उपदेशे., तस्य.)
वश-म-वद (मोऽनुस्वारः)	प्रिय-म्-वद (मोऽनुस्वारः)
वशंवद-सु (स्वौजस.)	प्रियंवद-सु (स्वौजस.)
वशंवद-सु-(उपदेशे.,तस्य., ससजुषो.)	प्रियंवद-सु (उपदेशे., तस्य., ससजुषो.)
वशंवद-रु (उपदेशे., तस्य.)	प्रियंवद- रु- (उपदेशे., तस्य.)
वशंवद् -र् (खरवशान.)	प्रियंवद् -र् (खरवशान.)
वशंवदः - पु. प्र. एकवचन।	प्रियंवदः- पु. प्र. एकवचन।

16. अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते – 3.2.75 मनिन्, क्वनिप्, विच्, एते प्रत्ययाः धातोः स्युः।

अनुवृत्ति – विजुपे छन्दसि' से विच् और 'आतो मनिन्' से मनिन् की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – आकारान्त भिन्न धातुओं से भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय होते हैं। मनिन् में अन्त्य नकार इत्संज्ञक हैं और इकार उच्चारणार्थ है। अतः केवल मन् ही शेष रहता है। इसी प्रकार क्वनिप् और वनिप् में वन् शेष रहता है। क्वनिप् में कित् होने से उसके परे रहते 43.3 ग्क्ङति च से गुण वृद्धि का निषेध हो जाता है।

उदाहरण के लिए – शोभनं श्रृणाति (अच्छी तरह हिन्सा करता है) इस विग्रह में सु पूर्वक' 'शृ' धातु से मनिन् प्रत्यय होकर सु-शृ-मन् रूप बनेगा। यहाँ सार्वधातुका. से शृ के ऋकार के स्थान पर गुण आर् होकर सु-श्-अर्मन् रूप बनने पर आर्धधातुकस्यः से इडागम प्राप्त था किन्तु अग्रिम सूत्र उसका निषेध कर देता है।

17. नेड्वशि कृति – 7.2.8 वशादेः कृत इण् न स्यात्। शृ हिंसायाम्। सुशर्मा। प्रातरित्वा।

सूत्रार्थ – वशादि कृत प्रत्यय का अवयव इट् नहीं होता।

उदाहरण के लिए – सुशर्मन् में (मनिन्) मन् वशादि कृत प्रत्यय है अतः प्रकृत सूत्र नेड्वशि कृति से उसको इडागम का निषेध हो जाता है। तब यज्वन् की भाँति सुशर्मन् रूप सिद्ध होता है तथा उपधा दीर्घ, पदान्त न लोप होकर पु.प्र. एकवचन में सुशर्मा रूप बनता है।

सुशर्मा - (अच्छी तरह हिन्सा करने वाला)	प्रातरित्वा - (प्रातःकाल जाने वाला)
सु-शृ मनिन् (अन्येभ्योऽपि.)	प्रातर्-इण्-क्वनिप् (अन्येभ्यो.)
सु-शृ-मनिन् (हल., उपदेशे., तस्य.)	प्रातर् -इण्-क्वनिप् (हल., उपदेशे., तस्य.)
सु-शृ-मन् (सार्वधातुका.)	प्रातर्-इ-वन (हल., तस्य.)
सु-श्-अर-मन् (आर्धधातु.,नेड्वाशि) (कृत्तद्धित.)	प्रातर्-इ-वन् (ह्रस्वस्यपिति कृति.)
सुशर्मन् -सु- (स्वौजस.)	प्रातर्-इ-तुक्-वन् (हल., उपदेशे., तस्य.)
सुशर्मन् -सु (उपदेशे., तस्य.)	प्रातर्-इ-त्-वन् (कृत्तद्धित.)
सुशर्मन् -स (सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ)	प्रातरित्वन्-सु (स्वौजस.)
सु-शर्म-आ-न्-सन् (हलङ्याब्भ्यो दीर्घात्.)	प्रातरित्वन्-सु (उपदेशे., तस्य.)
सुशर्मान् (नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य)	प्रातरित्वन्-स् (सर्वनामस्थाने चा.)
सुशर्मा- पु.प्र. एकवचन।	प्रातरित्वान् -स् (हल्ङ्याभ्यो.)
प्रातरित्वान्	(नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य)
	प्रातरित्वा - पु.प्र. एकवचन।

18. विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत्- 6.4.41 अनुनासिकस्याऽऽत्स्यात्। विजायते इति विजावा। ओणृ अपनयने। अवावा। विच् । रूष रिष हिंसायाम्। रोट्। रेट्। सुगण।

सूत्रार्थ – विट् और वन् परे होने पर अनुनासिकान्त अंग के स्थान पर आकार आदेश होता है। अलो. परि. से यह आदेश अन्त्य वर्ण के स्थान पर ही होता है। विट् प्रत्यय वेद में होता है अतः इसके उदाहरण वैदिक प्रक्रिया में प्राप्त होते हैं। वन् से यहाँ क्वनिप् और वनिप् दोनों ही प्रत्ययों का ग्रहण होता है, क्योंकि इन दोनों में वन् ही शेष रहता है।

उदाहरण के लिए – वि-पूर्वक्-जन् धातु से अन्येभ्योऽपि. सूत्र द्वारा वनिप् प्रत्यय होकर वि-जन्-वन् रूप बनने पर प्रकृत सूत्र विड्वनो से अनुनासिक नकार के स्थान पर

आकारोदश होकर वि-ज-आ-वन-रूप बनता है तब 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ होकर विजावन रूप से सिद्ध होता है।

विजावा (जन्मने वाला)	अवावा (चोर या दूर करने वाली ब्राह्मणी)
वि-जन्-वनिप् (अन्ये., अंगस्य.)	ओण-वनिप् (अन्येभ्यो. अंगस्य)
वि-जन्-वनिप् (हल्., उपदेशे, तस्य.)	ओण्-वनिप् (हल, उपदेशे, तस्य.)
वि-जन्-वन् (विड्वनो.)	ओण्-वन् (विड्वनोरनु.)
वि-ज-आ-वन् (अकः सवेर्णे दीर्घः)	ओ-आ-वन् (एचोऽयवायावः)
विजावन् (कृत्तद्धित.)	अव्-आ-वन् (कृत्तद्धित.)
विजावन् -सु (स्वौजस.)	अवावन् -सु (स्वौजस.)
विजावन-सु (उपदेशे., तस्य.)	अवावन् -सु (उपदेशे., तस्य.)
विजावन् -स्)सर्वनामस्थाने.)	अवावन्-स् (सर्वनामस्थाने चॉऽसम्बुद्धौ)
विजावान्-स्- हल्ङ्याब्भ्यो.)	अवावान् -स् (हल्ङ्याब्भ्यो.)
विजावन् (नलोपः प्राति.)	अवावान् (नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य)
विजावा - पु.प्र. एकवचन।	अवावा- पु. प्र. एकवचन।

इसी प्रकार रूष् और रिष् धातु से क्रमशः विच् प्रत्यय लगकर रोट् और रेट् शब्द बनते हैं। विच् का सर्वापहार लोप होने पर लघूपध गुण होकर रोष् और रेष् रूप बनते हैं। प्रथमा एकवचन में सु के सकार का लोप होकर तथा षकार को जश डकार होकर खरिच से टकार हो रोट् और रेट् रूप सिद्ध होते हैं।

रोट् (हिंसक या मारना)	रेट् (हिंसक या मारना)
रुष् -विच् (अन्येभ्यो.)	रिष्-विच् (अन्येभ्यो.)
रुष्-विच् (हल., तस्य., उपदेशे., तस्य.)	रिष्-विच् (हल., उपदेशे., तस्य.)
रुष्-व् (अपृक्तएकाल प्रत्ययः)	रिष्-व्- अपृक्तस्य एकाल प्रत्ययः)
रुष्-व् (वरपृक्तस्य)	रिष्-व् (वेरपृक्तस्य)
रुष्- (प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्)	रिष्- (प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्)
रुष्- (पुगन्त लघू.)	रिष् (पुगन्त लघूपधस्य च)
रोष्- (कृत्तद्धित.)	रेष् - (कृत्तद्धित.)
रोष् - (स्वौजस.)	रेष् - (स्वौजस.)

रोष्- सु- (उपदेशे, तस्य.)	रेष्-सु (उपदेशे., तस्य.)
रोष्-स् (हल्ङयाब्भ्यो.)	रेष्-स् (हल्ङयाब्भ्यो.)
रोष् - (झलां जशोऽन्ते)	रेष् - (झलां जशोऽन्ते)
रोड् - (वाऽवसाने)	रेड - (वाऽवसाने)
रोट् - पु. प्र. एकवचन।	रेट् - पु. प्र. एकवचन।
सुगण् - (अच्छा गिनने वाला)	
सु- गण्-विच् (अन्येभ्यो.)	सु-गण्- (कृत्तद्धित.)
सु-गण्-विच् (हल्., उपदेशे., तस्य.)	सुगण्-सु (स्वौजस.)
	सुगण्-सु (उपदेशे, तस्य.)
सु-गण्-व्- (अपृक्तएकाल प्रत्ययः)	सुगण्-सु (हल्ङयाब्भ्यो.)
सु-गण-व् (वेरपृक्तस्य)	
सु-गण्- (प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्)	सुगण - प्र. एकवचन।

19. क्विप् च - 2.2.76 अयमपि दृश्यते। उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्।

अनुवृत्ति - यहाँ सुपिस्थ से सुपि तथा अन्येभ्योऽपि से अन्येभ्यः की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – सुबन्त उपपद रहने पर सभी धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है। क्विप् में केवल व् शेष रहता है।

उदाहरण के लिए – उखायाः स्रंसते (हांडी से गिरता है) इस विग्रह में पञ्चम्यन्त उखाउपपद पूर्वक स्रंस् धातु से क्विप् च द्वारा कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय होकर उखा-ङ.सि.-स्रंस्-व् रूप बनता है। तब वेरपृक्तस्य से अपृक्तवकार का लोप हो उखा-ङसि-स्रंस रूप बनने पर प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् परिभाषा से कित् क्विप परे होने के कारण अनिदितां हल उपधायाः से स्रंस की उपधा नकार का लोप होकर उखा-ङसि-स्रस् रूप बनता है।

उखास्रत् - (हांडी या बटुए से गिरा हुआ)	पर्णध्वत् (पत्ते से गिरा हुआ)
उखा-ङसि-स्रंस-क्विप् (क्विप् च)	पर्ण-भ्यस्-ध्वंस-क्विप् (क्विप् च)
उखा-ङसि-स्रंस्-क्विप् (हल.,लश.,उप.,तस्य.)	पर्ण-भ्यस्-ध्वंस्-क्विप्(हल.,लश.,उप., तस्य.)
उखा-ङसि-स्रंस-व (अपृक्तएका: वेरपृ.)	पर्ण-भ्यस्-ध्वंस्-व् (अपृक्तएकाल.)
उखा-ङसि-स्रंस (प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्)	पर्ण-भ्यस्-ध्वंस्-व् (वेरपृक्तस्य)

	पर्ण-भ्यस्-ध्वसं (प्रत्यय लोपे प्रत्ययलक्षम्)
उखा-ङसि-स्रंस (अनिदितां हलय., ग्क्ङिति.)	पर्ण-भ्यस्-ध्वंस् (अनिदितां.)
उखा-ङ.सि-स्रस (उपपदमतिङ)	पर्ण-भ्यस्-ध्वस् (उपपदमतिङ)
उखा-ङसि-स्रस् (कृत्तद्धित.)	पर्ण-भ्यस्-ध्वस् (कृत्तद्धित.)
उखा-ङसि-स्रस् (सुपोधातु प्रातिपदिकयोः)	पर्ण-भ्यस्-ध्वस् (सुपोधातु)
उखा-स्रस्-सु (स्वौजस.)	पर्ण-ध्वस् (स्वौजस.)
उखा-स्रस्-सु (उपदेशे, तस्य.)	पर्ण-ध्वस्-सु (उपदेशे., तस्य.)
उखा-स्रस्-स् (हल्ङयाब्भ्यो.)	पर्णध्वस्-स् (हल्ङयाब्भ्यो.)
उखा-स्रस् (वसुसंसुध्वंस्वनडुहां दः)	पर्णध्वस् - (वसुसंसुध्वंस्वनडुहां दः)
उखा-स्रद् (वाऽवसाने)	पर्णध्वद् - (वाऽवसाने)
उखास्रत् - नपुं. प्र. एकवचन।	पर्णध्वत् - नपुं. प्र. एकवचन।
वाहभ्रट् - (घोड़े से गिरा हुआ)	
वाह-ङसि-भ्रंश्-क्विप् (क्विप् च)	वाह-ङसि-भ्रंश् (सुपोधातु.)
वाह-ङसि-भ्रंश्-क्विप् (लश.,हल.,तस्य., उप.)	वाह-भ्रश-सु (स्वौजस.)
वाह-ङसि-भ्रंश्-व् (अपृक्तएकाल प्रत्ययः)	वाह-भ्रश-सु (उपदेशे., तस्य.)
वाह-ङसि-भ्रंश्-व् (वेरपृक्तस्य)	वाह-भ्रश्-स् (हल्ङयाब्भ्यो.)
वाह-ङसि-भ्रंश् (प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्)	वाह-भ्रश् (भ्रश्चभ्रश्ज सृजमृज....षः)
वाह-ङसि-भ्रंश (अनिदितां हल.,)	वाह - भ्रष् (झलां जशोऽन्ते)
वाह-ङसि-भ्रश - (उपपदमतिङ), (कृत्तद्धित.)	वाह-भ्रड् (वाऽवसाने)
वाह. ङसि-भ्रश-(सुषो.)	वाहभ्रट् - न. प्र. एकवचन।

20. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये - 3.2.78 अजात्यर्थे, सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोजी।

सूत्रार्थ – अजातिवाचक (अजातौ) सुबन्त उपपद रहने पर स्वभाव अर्थ में धातु से णिनि प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए – उष्णभोजी- गर्म खाने वाला। यहाँ उष्णं भोक्तुं शीलमस्यास्ति- इस विग्रह में द्वितीयान्त उपपद उष्ण-अम् रहने के कारण भुज् धातु से प्रकृत सूत्र द्वारा णिनि प्रत्यय होकर उष्ण-अम्-भुज्-इन् रूप बनता है।

उष्णभोजी - (गर्म खाने वाला)

उष्ण-अम्-भुज्-णिनि (सुप्यजातौ.)	उष्ण-भोजिन्-सु (स्वौजस.)
उष्ण-अम्-भुज्-णिनि (चुटू., उपदेशे, तस्य.)	उष्ण-भोजिन्-सु (उपदेशे.,तस्य.)
उष्ण-अम्-भुज्-इन् (पुगन्तलघू.)	उष्ण-भोजिन्-स् (सर्वनामस्थाने.)
उष्ण-अम्-भुज्-इन् (उपपदम.)	उष्णभोजीन्-स् (हल्ड.याब्भ्यो.)
उष्ण-अम्-भुज्-इन् (कृत्तद्धित.)	उष्णभोजीन् - (नलोपः प्राति.)
उष्ण-अम्-भुज्-इन् (सुपोधातुप्राति.)	उष्णभोजी - पु.प्र.एकवचन।

21 **मनः** - 3.2.82 सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीयमानी।

अनुवृत्ति - यहाँ सुप्यजातौ. से सुपि और णिनि की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ - सुबंत उपपद रहने पर मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है। यहाँ दिवादि मन् धातु ग्रहण की गई है।

उदाहरण के लिए - दर्शनीय-अम्-मन् में दर्शनीय सुबंत उपपद है अतः उसके परे रहते प्रकृत सूत्र द्वारा णिनि प्रत्यय होकर दर्शनीय-अम्-मन्-इन् रूप बनता है।

दर्शनीयमानी - (अपने को सुंदर मानने वाला)

दर्शनीय-अम्-मन्-णिनि (मनः)	दर्शनीय-मानिन्-सु (उपदेशे., तस्य.)
दर्शनीय-अम्-मन्-णिनि (चुटू., उपदेशे., तस्य).	दर्शनीय-मानिन्-स् (अपृक्तएकाल प्रत्ययः)
दर्शनीय-अम्-मन्-इन् (अत उपधायाः)	दर्शनीय-मानिन्-स् (सर्वनामस्थाने चा.)
दर्शनीय-अम्-मान्-इन (उपपदमतिड.)	दर्शनीय-मानीन्-स् (हल्ड. याब्भ्यो)
दर्शनीय-अम्-मान्-इन (कृत्तद्धित.)	दर्शनीयमानीन् (नलोपः प्राति.)
दर्शनीय-अम्-मान्-इन (सुपोधातु.)	दर्शनीयमानी - पु.प्र. एकवचन।
दर्शनीय-मानिन्-सु (स्वौजस.)	

22. आत्ममाने खश्च - 3.2.83 स्वकर्मके मने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात्, चाण्णिनिः।

अनुवृत्ति - यहाँ मनः तथा सुप्यजातौ णिनिः की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ - अपने आपको मानना अर्थ में वर्तमान मन् धातु से सुबन्त उपपद रहने पर खश् प्रत्यय होता है और णिनि प्रत्यय भी।

उदाहरण के लिए - पण्डितमात्मानं मन्यते (अपने आपको पंडित मानता है) इस विग्रह में पंडित-अम्-मन रूप बनने पर सुबन्त पण्डितम् उपपद रहने के कारण प्रकृत सूत्र द्वारा खश् प्रत्यय होकर पण्डित-अम्-मन्-अ रूप बनेगा। तब धातु से विकरण श्यन् होने के साथ अरूर्द्वि. से मुमागम, उपपद समास, प्रातिपदिक., संज्ञा और सुप् अम् लोप होकर पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में पण्डितं मन्यः रूप सिद्ध होता है।

नोट : खश् के अभाव पक्ष में चकार द्वारा सुप्य. से णिनि प्रत्यय होकर पण्डितमानी रूप सिद्ध होता है।

पण्डितंमन्यः-(अपने को विद्वान मानने वाला)
पण्डित-अम्-मन्-खश् (आत्ममाने.)
पण्डित-अम्-मन्-खश् (लश., हल., तस्य.)
पण्डित-अम्-मन्-अ (दिवादिभ्यः श्यन्)
पण्डित-अम्-मन्-श्यन्-अ(लश.,हल.,तस्य.)
पण्डित-अम्-मन्-य-अ (अतोगुणे)
पण्डित-अम्-मन्-य्-अ (उपपद.)
पण्डित-अम्-मन्-य्-अ (कृत्तद्धित)
पण्डित-अम्-मन्य (सुपोधातु.)
पण्डित-मन्य (अरूर्द्विषद.)
पण्डित-मुम्-मन्य (हल., उपदेशे., तस्य.)
पण्डित-म्-मन्य (मोऽनुस्वार)
पण्डितं-मन्य-सु (स्वौजस.)
पण्डितं-मन्य-सु (उपदेशे., तस्य.)
पण्डितं-मन्य-स् (ससजुषोरुः)
पण्डितंमन्य-रु (उपदेशे., तस्य.)
पण्डितंमन्य-र् (खरवसा.)
पण्डितंमन्यः- पु.प्र. एकवचन।

नोटः- खश् के अभाव पक्ष में चकार द्वारा सुप्य. से णिनि प्रत्यय होकर पण्डितमानी रूप सिद्ध होता है।
पण्डितमानी-(अपने आपको पण्डित मानने वाला)
पण्डित-अम्-मन्-णिनि (सुप्यजातौणिनि.)
पण्डित-अम्-मन्-णिनि (चुटू., उपदेशे., तस्य.)
पण्डित-अम्-मन्-इन् (अत उपधायाः)
पण्डित-अम्-मान्-इन् (उपपद.)
पण्डित-अम्-मान्-इन् (कृत्तद्धित)
पण्डित-अम्-मान्-इन् (सुपोधातु.)
पण्डित-मानिन् (स्वौजस.)
पण्डित-मानिन्-सु (उपदेशे., तस्य.)
पण्डित-मानिन्-स् (अपृक्त एकाल प्रत्ययः)
पण्डित-मानिन्-स् (सर्वनामस्थाने)
पण्डित-मानीन्-स् (हल्ड.याब्भ्यो दीर्घात्)
पण्डित-मानीन् (न लोपः प्राति.)
पण्डितमानी-पु.प्र.एकवचन।

23. खित्यनव्ययस्य - 6.3.66 खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः। ततो मुम् । कालिम्मन्या।

अनुवृत्ति - अलुगुत्तरपदे से उत्तरपदे का अधिकार प्राप्त है और इकोह्रस्वो. से ह्रस्व की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ - खिदन्त उत्तरपद परे होने पर अव्यय से भिन्न पूर्व पद को ह्रस्व होता है।

उदाहरण के लिए - आत्मानं कालीं मन्यते (अपने आप को काली मानती है) इस विग्रह में काली-अम्-मन् रूप बनने पर पूर्व सूत्र आत्ममाने. से खश् प्रत्यय होकर कालीमन्य रूप बनता है। यहाँ मन्य उत्तरपद खिदन्त है अतः उसके परे होने पर प्रकृत सूत्र द्वारा काली के दीर्घ ईकार को ह्रस्व इकार होकर कालिंमन्या रूप सिद्ध होता है।

कालिंमन्या - (अपने आपको सुंदर या काली मानने वाली)

काली-अम्-मन्-खश् (आत्ममाने खश्च)
काली-अम्-मन्-खश् (लश., हल., तस्य.)
काली-अम्-मन्-अ (दिवादिभ्यः श्यन)
काली-अम्-मन्-श्यन्-अ (लश., हल., तस्य.)
काली-अम्-मन्-य-अ (अतोगुणे.)
काली-अम्-मन्-य्-अ (उपपद., कृत्तद्धित)
काली-अम्-मन्-य (सुपोधातु.)

काली-मन्य (खित्यनव्ययस्य)
काल्-इ-मन्य (अरूर्द्विषद.)
कालि-मुम्-मन्य(हल.,उपदेशे., तस्य.)
कालि-म्-मन्य (मोऽनुस्वारः)
कालिं-मन्य-टाप (अजाद्यतस्टाप्ः)
कालिंमन्या-टाप् (हल., चुटू., तस्य.,)
कालिंमन्या-आ (अकः सवर्णे दीर्घः)
कालिंमन्या-स्त्रीलिंग प्रथमा एकवचन।

24 करणे यज : 3.2.85 करणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनिः स्यात्कर्तरि। सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ।

अनुवृत्ति - यहाँ भूते का अधिकार प्राप्त है तथा सुप्य. से णिनि की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ - करण उपपद रहने पर भूतकाल अर्थ में यज् धातु से णिनि प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए - सोमेनयागं कृतवान (सोम से यज्ञ किया) इस विग्रह में सोम-टा-यज् से प्रकृत सूत्र द्वारा णिनि प्रत्यय होकर सोमयाजिन रूप बनता है। तब विभक्ति कार्य और उपधा दीर्घ होकर पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में सोमयाजी रूप सिद्ध होता है।

सोमयाजी - (सोम से यज्ञ करने वाला)
सोम-टा-यज्-णिनि (सुप्य., करणेयजः)
सोम-टा-यज्-णिनि (चुटू., उपदेशे., तस्य.)
सोम-टा-यज्-इन् (अत उपधायाः)

अग्निष्टोमयाजी (अग्निष्टोम यज्ञ करने वाला)
अग्निष्टोम-टा-यज्-णिनि (सुप्य., करणेयजः)
अग्निष्टोम-टा-यज्-णिनि (चुटू., उपदेशे.,तस्य.)
अग्निष्टोम-टा-यज्-इन् (अत उपधायाः)

सोम-टा-याज्-इन् (उपपद.)	अग्निष्टोम-टा-याज्-इन् (उपपद.)
सोम-टा-याज्-इन् (कृत्तद्धित.)	अग्निष्टोम-टा-याज्-इन् (कृत्तद्धित.)
सोम-टा-याज्-इन् (सुपोधातु.)	अग्निष्टोम-टा-याज्-इन् (सुपोधातु.)
सोम-याज्-इन्-सु (स्वौजस.)	अग्निष्टोम-याज्-इन्-सु (स्वौजस.)
सोम-याज्-इन्-सु (उपदेशे., तस्य.)	अग्निष्टोम-याज्-इन्-सु (उपदेशे., तस्य.)
सोम-याज्-इन्-स् (अपृक्त एकाल् प्रत्ययः)	अग्निष्टोम-याज्-इन्-स् (अपृक्त एकाल् प्रत्ययः)
सोम-याजिन्-स् (सर्वनामस्थाने.)	अग्निष्टोम-याजिन्-स् (सर्वनामस्थाने.)
सोम-याजीन्-स् (हल्ड.याब्भ्यो दीर्घात.)	अग्निष्टोम-याजिन्-स् (हल्ड.याब्भ्यो दीर्घात.)
सोमयाजी (न लोपः प्राति.)	अग्निष्टोमयाजी (न लोपः प्राति.)
सोमयाजीन - पु.प्र. एकवचन	अग्निष्टोमयाजीन - पु.प्र. एकवचन

25. दृशेः क्वनिप् - 3.2.94 कर्मणिभूते । पारं दृष्टवान पारदृश्वा।

अनुवृत्ति - यहाँ अधिकार सूत्र भूते तथा कर्मणीति से कर्मणि की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ कर्म उपपद रहने पर भूतकाल अर्थ में दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए - पारं दृष्टवान् (पारदर्शी) इस विग्रह में पार-अम् कर्म उपपद होने के कारण प्रकृत सूत्र द्वारा दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होकर पार-अम्-दृश-वन् रूप बनता है।

पारदृश्वा - (पारदर्शी या पारंगत)	पार-दृश्-वन्-सु (उपदेशे., तस्य.)
पार-अम्-दृश्-क्वनिप् (दृशेः क्वनिप्)	पार-दृश्-वन्-स् (अपृक्त एकाल प्रत्ययः)
पार-अम्-दृश्य-क्वनिप् (लश., हल., तस्य.)	पार-दृश्-वन्-स् (सर्वनामस्थाने.)
पार-अम्-दृश्-वन् (उपपद.)	पारदृश्वान-स् (हल्ड.याब्भ्यो दीर्घात्.)
पार-अम्-दृश्-वन् (कृत्तद्धित)	पारदृश्वान् (न लोपः प्राति.)
पार-अम्-दृश्-वन् (सुपोधातु.)	पारदृश्वा - पु.प्र.एकवचन।
पार-दृश्-वन्-सु (स्वौजस.)	

26. राजनि युधि कृञः- 3.2.95 क्वनिप्स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान् राजयुध्वा। राजकृत्वा।

अनुवृत्ति - यहँ भूते और दृशेः क्वनिप् की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ - भूत कालिक अर्थ में राजन् शब्द (कर्म) उपपद रहने पर युध् धातु और कृञ् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

नोट - युध् (लड़वाना) धातु यहाँ अंतर्भावित ण्यर्थ ली जाती है अर्थात् णि का अर्थ इसके अंदर निहित रहता है। अर्थात् युद्ध किया नहीं अपितु युद्ध करवाया यह अर्थ अभिप्रेत है।

उदाहरण के लिए - राजानं योधितवान (राजा को लड़वाया) इस विग्रह में राजन्-अम् (राजानम्) कर्म उपपद होने के कारण प्रकृत सूत्र राजनि. द्वारा युध् धातु से क्वनिप प्रत्यय होकर राजयुध्वन् रूप बनता है।

राजयुध्वा - (राजा से युद्ध करवाया)
राजन्-अम्-युध्-क्वनिप् (राजनि.)
राजन्-अम्-युध्-क्वनिप् (लश.हल.उपदेशे.,तस्य)
राजन्-अम्-युध्-वन् (उपपद)
राजन्- अम्-युध्-वन् (कृत्तद्धित.)
राजन्-अम्-युध-वन् (सुपोधातु)
राजन्-युध्वन् (न लोपः.)
राज-युध्वन्-सु (स्वौजस.)
राज-युध्वन्-सु (उपदेशे., तस्य.)
राज-युध्वन्-स् (अपृक्त एकाल.)
राज-युध्वन्-स् (सर्वनामस्थाने.)
राज-युध्वान्-स् (हल्ड.याब्भ्योदीर्घात्.)
राज-युध्वान् (न लोपः प्राति.)
राजयुध्वा - पु.प्र. एकवचन।

राजकृत्वा (राजा बनाने वाला)
राजन्-अम्-कृ-क्वनिप् (राजनि.)
राजन्-अम्-कृ-क्वनिप् (लश.,हल.,उपदेशे.,तस्य)
राजन्-अम्-कृ-तुक्-वन् (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्)
राजन्-अम्-कृ-तुक्-वन् (हल.,उपदेशे.,तस्य)
राजन्-अम्-कृ-त्-वन (उपपद.)
राजन्-अम्-कृ-त्-वन (कृत्तद्धित.)
राजन्-अम्-कृत्-वन (सुपोधातु)
राजन्-कृतवन् (न लोपः.)
राज-कृतवन्-सु (स्वौजस.)
राज-कृत्वन्-स् (उपदेशे. तस्य.)
राज-कृत्वन्-स् (अपृक्त एकाल.)
राज-कृत्वन्-स् (सर्वनामस्थाने.)
राज-कृत्वान्-स् (हल्ड.याब्भ्योदीर्घात्.)
राज-कृत्वान् (न लोपः प्रति.)
राजकृत्वा- पु. प्र. एकवचन।

27. सहे च - 3.2.96 कर्मणीति निवृत्तम् । यह योधितवान् सहयुध्वा। सहकृत्वा।

अनुवृत्ति - यहाँ अधिकार सूत्र भूते और राजनि से युधिकृञः तथा दृशेःक्वनिप् की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- सह उपपद रहने पर भूत अर्थ में युध् और कृञ् धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

नोट - कर्मणीति निवृत्तम - कर्मणि की निवृत्ति हो गई। अर्थात् कर्मणि इति विक्रिय 3.2.93 सूत्र से राजनियुधिकृञ इस सूत्र में जो कर्मणि इस पद की अनुवृत्ति की गई थी वह इस सूत्र में नहीं होगी।

उदाहरण के लिए - सह योधितवान् (साथ लड़ाया) इस विग्रह में सह उपपद होने के कारण प्रकृत सूत्र 'सहे च' द्वारा युध् धातु से क्वनिपृ प्रत्यय होकर सह-युध्-क्वनिप् (वन्) सहयुध्वन् प्रातिपदिक बनता है।

सहयुध्वा - (साथ युद्ध करने वाला)

सह-युध्-क्वनिप् (सहे च)

सह-युध् -क्वनिप् (हल.,लश.,उप., तस्य.)

सह-युध्-वन् (उपपद.)

सह-युध्-वन् (कृत्तद्धित.)

सह-युध्वन्-सु (स्वौजस.)

सह-युध्वन्-सु (उपदेशे. तस्य)

सह-युध्वन्-स् (अपृक्त एकाल.)

सह-युध्वन्-स् (सर्वनामस्थाने.)

सह-युध्वान्-स् (हल्डयाब्भ्योदीर्घात्.)

सहयुध्वान् - (न लोपः.)

सहयुध्वा-पु. प. एकवचन

सहकृत्वा - (साथ करने वाला)

सह-कृ-क्वनिप् (सहे च)

सह-कृ-क्वनिप् (हल.,लश.,उप.,तस्य.)

सह-कृ-तुक्-वन् (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्)

सह-कृत-तुक्-वन् (हल., उपदेश., तस्यः)

सह-कृत्-वन् (उपपद.)

सह-कृत्-वन् (कृत्तद्धित.)

सह-कृत्वन्-सु (स्वौजस.)

सह-कृत्वन्-सु (उपदेशे., तस्य.)

सह-कृत्वन् सु (अपृक्त एकाल.)

सह-कृत्वन्-स् (सर्वनामस्थाने.)

सह-कृत्वान.-स् (हल्डयाब्भ्योदीर्घात्.)

सहकृत्वान् - (न लोपः.)

सहकृत्वा - पु.प्र. एकवचन

28. **सप्तम्यां जनेर्ड** - 3.2.97 यहाँ भूते का अधिकार प्राप्त है।

सूत्रार्थ - सप्तम्यन्त उपपद रहने पर जन् धातु से ड प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए - सरसि जातम् (सरोवर में उत्पन्न हुआ) इस विग्रह में- (सरसि) सरस् ङि सप्तम्यन्त उपपद होने के कारण प्रकृत सूत्र द्वारा जन् धातु से ड प्रत्यय होकर सरस्-ङि.-जन्-ड रूप बनेगा। इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

29. **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** - 6.3.14 ङे रलुक्। सरसिजम् । सरोजम्।

अनुवृत्ति - यहाँ अधिकार सूत्र अलुगुत्तर पदे और हलादन्तात् सप्तम्या 6.3.9 से सप्तम्या की अनुवृत्ति की गई है। सूत्रस्थ कृति उत्तरपदे का विशेषण है। अतः उसमें तदन्त विधि हो जाती है। अलुक् का अर्थ है-लोप न होना।

सूत्रार्थ - तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तरपद परे होने पर अधिकतर सप्तमी का लोप नहीं होता। यहाँ अधिकतर कहने का अभिप्राय है कि कभी-कभी सप्तमी का लोप होता भी है। इस प्रकार सप्तमी होने पर दो रूप बनते हैं - (1) लोप न होने पर, और (2) लोप होने पर।

(1) सरसिजम् - (इसमें सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं होता)

(2) सरोजम् - (इसमें सप्तमी विभक्ति का लोप हो जाता है।)

उदाहरण के लिए - सरस्-डि-ज्-अ में उत्तरपद ज कृदन्त है क्योंकि इसके अंत में कृत प्रत्यय ड (अ) है। अतः उसके परे होने पर प्रकृत सूत्र तत्पुरुषेकृतिबहुलम् द्वारा सप्तमी डि. के लोप का निषेध हो गया है। इस लोप न होने की स्थिति में नपुंसक लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में सरसिजम् रूप सिद्ध होता है।

सरसिजम् – (कमल)	सरोजम् – (कमल)
सरस्-डि.-जन्-ड (सप्तम्यां जनेर्डः)	सरस्-डि.-जन्-ड (सप्तम्यां जनेर्डः)
सरस्-डि.-जन्-ड (चुटू., यस्यलोपः)	सरस्-डि.-जन्-ड (चुटू. तस्यलोपः)
सरस्-डि.-जन्-अ (याचिभम्, भस्यटेर्लोपः)	सरस्-डि.-जन्-अ (यचिभम्, भस्यटेर्लोपः)
सरस्-डि.-ज्-अ (कृत्तद्धित., उपपद.)	सरस्-डि.-ज्-अ (कृत्तद्धित., उपपद.)
सरस्-डि.-ज (तत्पुरुषे कृति बहु.)	सरस्-डि.-ज-अ (सुपोधातु.)
सरस्-डि.-ज (लशक्व., तस्य.)	सरस्-ज्-अ (ससजुषो रुः)
सरस्-इ-ज-सु (स्वौजस.)	सर-रु-ज-अ (उपदेरो., तस्य.)
सरसिज-सु (स्वमो.)	सर-र्-ज्-अ (हशि च)
सरसिज-अम् (अतोऽम्)	सर-उ-ज्-अ (आद्गुणः)
सरसिजम् (अमिपूर्वः)	सरोज-सु (स्वौजस.)
सरसिजम्-नपुं.प्र. एकवचन।	सरेज-सु (स्वमोर्नपुंसकात्)
	सरोज-अम् (अतोऽम्)
	सरोजम्- (अमिपूर्वः)
	सरोजम् - नपुं. प्र. एकवचन।

30. उपसर्गे च संज्ञायाम् – 3.2.99 प्रजा स्यात्सन्ततौ जने।

अनुवृत्ति – यहाँ सप्तम्यां जनेर्डः की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – उपसर्ग उपपद होने पर संज्ञा अर्थ में जन् धातु से ड प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए – सन्तति अर्थ में प्र उपसर्ग पूर्वक जन् धातु से प्रकृत सूत्र उपसर्गे च. द्वारा ड प्रत्यय होकर संज्ञा अर्थ में प्र-जन्-ड रूप बनेगा तब टि अन् का लोप हो प्रज प्रातिपदित बनता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व विवक्षा में टाप प्रत्यय होकर प्रजा रूप सिद्ध होता है।

प्रजा– (सन्तति)

प्र-जन्-ड (सप्तम्यां, उपसर्गे च.)	प्रज-टाप् (अजाद्यतष्टाप्)
प्र-जन्-ड (चुटू., तस्य.)	प्रज-टाप् (हल., चुटू., तस्य)
प्र-जन्-अ (यचिभम्, भस्यटेर्लोपः)	प्रज-आ (अकः सवर्णेदीर्घः)
प्र-ज्-अ (कृत्तद्धित.)	प्रजा-स्त्री प्र. एकवचन।

31. क्तक्तवतू निष्ठा 1.1.26 एतौ निष्ठांसञ्ज्ञौ स्तः।

अर्थ- क्त और क्तवतु निष्ठा प्रत्यय कहलाते हैं।

32. निष्ठा - 3.2.102 भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात्। तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः कर्तरि कृतिदि कर्तरि क्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विषणुः।

अनुवृत्ति- यहाँ स्पष्ट अर्थ के लिये धातोः और भूते की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ – निष्ठा (क्त क्तवतू) प्रत्यय भूतकालिक अर्थ में धातुओं के साथ लगते हैं। तयोरेव से क्त प्रत्यय भाव और कर्म में होता है तथा क्तवतु प्रत्यय कर्तरिकृत. से कर्ता अर्थ में होता है। इसीलिए क्तप्रत्यान्त के कर्ता से तृतीय तथ क्तवतु प्रत्यान्त के कर्ता से प्रथमा विभक्ति होती है और क्त प्रत्ययान के कर्म-से प्रथमा तथा क्तवतुप्रत्ययान्त के कर्म से द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण के लिए- स्तुतस्त्वया विष्णुः (तुमने विष्णु की स्तुति की) में स्तुतः पद क्तप्रत्ययान्त है।

अतः यहाँ भूतकाल अर्थ में कर्मवाच्य में स्तु धातु से क्त प्रत्यय होकर स्तुतः रूप सिद्ध होता है।

स्तुतः – (स्तुति किया गया)	स्नातम् – (स्नान किया)
स्तु-क्त (क्तक्तवतू., निष्ठा)	स्ना-क्त (क्तक्तवतू., निष्ठा)
स्तु-क्त (लश., तस्य.)	स्ना-क्त (लश., तस्य.)
स्तु-त (कृत्तद्धित.)	स्ना-त (कृत्तद्धित.)
स्तुत-सु (स्वौजस.)	स्नात-सु (स्वौजस.)

स्तुत-सु (उपदेशे., तस्य.)

स्तुत-स् (ससजुषो.)

स्तुत-रु (उपदेशे., तस्य.)

स्तुत-र् (खरवसा.)

स्तुतः - पु. प्र. एकवचन।

स्नात-सु (स्वमोर्न.)

स्नात-अम् (अतोऽम्)

स्नातम् - (अमिपूर्वः)

स्नातम्-नपुं. प्र. एकवचन।

इसी प्रकार कर्ता अर्थ में क्तवतु प्रत्यय का उदाहरण है-विश्वं कृतवान् विष्णुः। यहाँ कृतवान् पद क्तवतु प्रत्यन्त है। यहाँ कर्ता अर्थ में कृ धातु से क्तवतु प्रत्यय होकर कृ-तवत् रूप बनने पर प्रतिपादिक संज्ञा हो कृतवत् रूप बनता है।

कृतवान्– (किया)

कृ-क्तवतु (निष्ठा)

कृ-क्तवतु (लश., उपदेशे., तस्य.)

कृ-तवत् (कृत्तद्धित.)

कृतवत्-सु (स्वौजस.)

कृतवत्-सु. (उपदेशे., तस्य.)

कृतवत्-स् (उगिदचां सर्वनाम., मिदचोऽन्त्यात.)

कृत-व-नुम्-त्-स् (हल., उपदेशे., तस्य.)

कृत-व-न्-त्-स् (हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात.)

कृतवन्-त् (संयोगान्तस्य लोपः)

कृतवन् - (सर्वनामस्थाने. प्रत्ययलोपे.)

कृतवान् - पु. प्र. एकवचन।

33. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः- 8.2.42 रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। शॄ हिंसायाम्। ॠत इत्। रपरः। णत्वम्। शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः।

सूत्रार्थ- रकार और दकार के पश्चात् क्त तथा क्तवतु के तकार के स्थान पर नकार होता है तथा पूर्व दकार के स्थान पर भी नकार होता है।

उदाहरण के लिए- शृ (मारना) धातु से कर्म में क्त प्रत्यय होकर शृ-त रूप बनता है। पश्चात् रदाभ्यां निष्ठा. से अन्त्य तकार को नकार होकर शीर्ण प्रातिपदिक सिद्ध होता है।

शीर्णः- (हिंसा या कुम्हलाना)

शृ-क्त (निष्ठा)

शृ-क्त (लश., तस्यलोपः)

भिन्नः- (भिन्न)

भिद्-क्त (निष्ठा)

भिद्-क्त् (लश., तस्य.)

शृ-त (ऋतइद्धातोः)
श्-इ-त (उरणरपरः)
श्-इ-र्-त (हलि च)
श्-ई-र्-त (रदाभ्यां निष्ठातो नः.)
श्-ई-र्-न (रषाभ्यां नोणः समानपदे)
श्-ई-र्-ण (कृत्तद्धित.)
शीर्ण-सु (स्वौजस.
शीर्ण-सु (उपदेशे., तस्य.)
शीर्ण-स् (ससजुषो रुः)
शीर्ण-रु (उपदेशे., तस्य.)
शीर्ण-र् (खरवसानयो.)
शीर्णः-पु. प्र. एकवचन।

भिद्-त (रदाभ्यांनिठा.)
भिन्-न (कृत्तद्धित.)
भिन्न-सु (स्वौजस.)
भिन्न-सु (उपदेशे., तस्य्)
भिन्न-स् (ससजुषो रुः)
भिन्न-रु (उपदेशे., तस्य.)
भिन्न-र् (खरवसानयो.)
भिन्नः-पु. प्र. एकवचन।
छिन्नः-(काटा गया)
छिद्-क्त (निष्ठा)
छिद्-क्त (लश., तस्य.)
छिन्न-त (रदभ्यांनिष्ठा.)
छिन्न-न (कृत्तद्धित.)
छिद्-सु (स्वौजस.)
छिन्न : - पु. प्र. एकवचन

34. संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः - 8.2.43 निष्ठातस्य नः स्यात्। द्राणः। ग्लानः।

अनुवृत्ति– यहाँ रदाभ्यां से निष्ठा तःनः की अनुवृत्ति की गयी है।

सूत्रार्थ-संयोगादि आकारन्त और यणवान (जिसमें य् व् र् या त् हो) धातु के पश्चात् क्त और क्तवतु के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदाहरण के लिए- द्रा (शरमाना, दौड़ना, भागना) धातु में कर्म में क्त प्रत्यय हो द्रा-क्त रूप बनता है। यहाँ द्रा धातु संयोगादि है, आकारान्त भी और रकार होने से यणवान भी अतः प्रकृत सूत्र संयोगादे से प्रत्यय के तकार को नकार होकर द्रा-न रूप बनने पर णत्व होकर प्रातिपदिक द्राण बनता है तब पु. प्र. एकवचन के द्राण : रूप सिद्ध होता है।

द्राणः- (टेड़ा मेड़ा दौड़ना)
द्रा-क्त (निष्ठा)
द्रा-क्त (लश., तस्य.)
द्रा-त (संयोगदे.)

ग्लानः- (उदास)
ग्लै-क्त (निष्ठा)
ग्लै-क्त (लश., तस्य.)
ग्लै-त (आदे च उपदेशेऽशिति)

द्रा-न (अटकुप्वाङ्)
द्राण- (कृत्तद्धित.)
द्राण-सु (स्वौजस., उपदेशे, तस्य.)
द्राण-स् (ससजुषो., उपदेशे., तस्य.,)
द्राण-र् (खरवसानयो.)
द्राणः पु. प्र. एकवचन।

ग्ला-त (संयोगादे.)
ग्ला-न- (कृत्तद्धित.)
ग्ला-न-सु (स्वौजस., उपदेशे., तस्य.)
ग्ला-न-स् (ससजुषो., उपदेशे., तस्य.)
ग्लान-र् (खरंवसानयो.)
ग्लानः- पु. प्र. एकवचन

35. ल्वादिभ्य[1]:- 8.2.44 एक विंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्या धातुः। गृहिज्येति संप्रसारणम्।

अनुवृत्ति- यहाँ निष्ठा से क्त की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- लू (काटना) आदि इक्कीस धातुओं के पश्चात् क्त और क्तवतु के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदाहरण के लिए- लू धातू से भूतकाल अर्थ में क्त प्रत्यय होकर लू-त रूप बनने पर प्रकृत सूत्र द्वारा तकार के स्थान पर नकार आदेश होकर लू-न प्रातिपदिक बनता है। पश्चात् सुप् आदि विभक्ति कार्य होकर पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में लूनः रूप सिद्ध होता है।

36. हलः- 6.4.2 अंगवयवाद्धलः परं यत्संप्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः।

सूत्रार्थ- हल से परे सम्प्रसारण को दीर्घ आदेश देता है।

लूनः- (काटा हुआ)
लू-क्त निष्ठा)
लू-क्त (लश., तस्य.)
लू-त (ल्वादिभ्यः)
लू-न (कृत्तद्धित.)
लून-सु (स्वौजस.)
लून-सु (उपदेशे., तस्य.)
लून-स् (ससजुषो., उपदेशे, तस्य.)
लून-र् (खरवसानयो.)

जीनः-(वृद्ध)
ज्या-क्त (निष्ठा)
ज्या-क्त (लश., तस्य.)
ज्या-त (ग्रहिज्या)
ज्-इ-आ-त (सम्प्रसारणाच्च)
ज्-इ-त (ल्वादिभ्यः)
ज्-इ-न (हलः)
ज्-ई-न (कृत्तद्धित.)

---

1. इक्कीस धातुएँ हैं- लूञ, स्तृञ, कृञ, वृञ, धृञ, शृ, पृ, वृ, भृ, दृ,जृ (झृ, धृ), नृ, कृ, ऋ, गृ, ज्या, री, ली, व्ली और प्ली।

लूनः पु. प्र. एक.

जीन-सु (स्वौजस., उपदेशे., तस्य.)

जीन-स् (ससजुषो. उपदेशे., तस्य.)

जीन-र् (खरवसानयो.)

जीनः - पु. प्र. एकवचन।

37. ओदितश्च- 8.2.45 भुजो-भुग्नः। टुओश्वि-उच्छूनः।

अनुवृत्ति- यहाँ निष्ठा और तयोरेव. की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ-ओदित् (जिसका ओकार इत्संज्ञक हो) धातु के पश्चात् क्त और क्तवतु के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदाहरण के लिए – भुज (टेढ़ा करना) धातु से भूतार्थ में निष्ठा द्वारा क्त और क्तवतु प्रत्यय प्राप्त होने पर तयोरेव. की सहायता से कर्म में क्त (त) प्रत्यय होने पर भुज्-त रूप बनता है। ओदितश्च से ओदित् धातु भुज् से परेनिष्ठा के तकार को नकार होकर भुज्-न रूप बनने पर पूर्वात्रऽसिद्धम परिभाषा से नकारादेश असिद्ध होने के कारण चोः कुः द्वारा जकार के स्थान पर गकार होकर भुग्नः पुल्लिंग प्रथमा एकवचन रूप सिद्ध होता है।

भुग्नः- (टेढ़ा)

भुजो-क्त (निष्ठा)

भुजो-क्त (उपदेशे., तस्य.)

भुज्-क्त (लश., तस्य)

भुज्-त (ओदितश्च)

भुज्-न (चोः कुः)

भु-ग्-न (कृत्तद्धित.)

भुग्न-सु (स्वौजस.)

भुग्न-सु (उपदेशे., तस्य.)

भुग्न-स् (ससजुषो रुः)

भुग्न-रु (उपदेशे., तस्य.)

भुग्न-र (खरवसानयो.)

भुग्नः- पु. प्र. एकवचन।

उच्छूनः- (फूला हुआ)

उद्-टुओश्वि-क्त (निष्ठा, तयोरेव.)

उद्-टुओशिव-क्त (आदिर्ञिटुडवः, उपदेशे.,तस्य.)

उद्-शिव-क्त (लश.,तस्य.)

उद्-शिव-त (ओदितश्च)

उद्-शिव-न्-अ (वचिस्वपियजादीनांकिति)

उद्-श्-उ-इ-न्-अ (सम्प्रसारणाच्च)

उद्-श्-उ-न-अ (हलः)

उद्-श्-ऊ-न्-अ (शश्छोऽटि)

उद्-छ-ऊ-न्-अ (स्तोश्चुनाश्चुः)

उ-ज्-छ्-ऊ-न्-अ (खरि च)

उ-च्-छ्-ऊ-न्-अ (कृत्तद्धित.)

उच्छून-सु (स्वौ.)

उच्छूनः- पु. प्र. एकवचन।

38. शुषः कः- 8.2.51 निष्ठातस्य कः। शुष्कः।

अनुवृत्ति- यहाँ स्पष्ट अर्थ के लिए निष्ठा की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- शुष् (सूखना) धातु के पश्चात् क्त और क्तवतु के तकार के स्थान पर ककार आदेश होता है। उदाहरण के लिए-शुष धातु के बाद निष्ठा के क्त प्रत्यय के परे होने के कारण प्रकृत सूत्र द्वारा उसके स्थान पर ककार आदेश हो शुष्-क रूप बनता है। तब प्रातिपदिक संज्ञा और सुप् आदि विभक्ति कार्य हो पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में शुष्कः रूप सिद्ध होता है।

शुष्कः- (सूखा हुआ)

शुष्-क्त (निष्ठा)

शुष्-क्त (लश., तस्य.)

शुष-त (शुषः कः)

शुष्-क (कृत्तद्धित.)

शुष्-क-सु (स्वौजस.)

शुष्क-सु (उपदेशे. तस्य.)

शुष्क-स् (ससजुषो रुः)

शुष्क - रु (उपदेशे., तस्य.)

शुष्क-र् (खरवसानयो.)

शुष्कः- पु. प्र. एकवचन।

39. पचो वः - 8.2.52 पक्वः। क्षै हर्षक्षये।

अनुवृत्ति- निष्ठा की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- पच् धातु से परे निष्ठा के तकार को "व" आदेश होता है।

पक्वः- (पकाया गया)

पच्-क्त (निष्ठा)

पच्-क्त (लश., तस्य.)

पच्-त (पचो वः)

पच्-व (चोः कुः)

पक्व (कृत्तद्धित.)

पक्व-सु (स्वौजस.)

पक्व-सु (उपदेशे, तस्य.)

पक्व-स् (ससजुषो रुः)

पक्व-रु (उपदेशे., तस्य.)

पक्व-र् (खरवसानयो.)

पक्वः पु. प्र. एकवचन।

40. क्षायो मः- 8.2.53 क्षामः।

अनुवृत्ति- यहाँ भी निष्ठा की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ - क्षै (कृश होना) धातु के पश्चात् क्त और क्तवतु के तकार के स्थान पर मकार आदेश होता है।

क्षामः-(कृश)
क्षै-क्त (निष्ठा)
क्षै-क्त (लश., तस्य.)
क्षै-त (आदेच उपदेशेऽशिति)
क्षा-त (क्षायो मः)
क्षा-म (कृत्तद्धित.)
क्षाम-सु (स्वौजस.)
क्षाम-सु (उपदेशे.,तस्य.)
क्षाम-स् (ससजुषो रुः)
क्षाम-रु (उपदेशे., तस्य)
क्षाम-र् (खरवसानयो.)
क्षामः- पु. प्र. एकवचन।

41. निष्ठायां सेटि - 6.4.52 णेर्लोपः भावितः। भावितवान्।

अनुवृत्ति- यहाँ स्पष्टीकरण के लिये णेरनिटि से णे तथा आतोलोपः से लोपः की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- इट् सहित निष्ठा के परे होने पर णिजन्त धातु के णिच् का लोप हो जाता है।

उदाहरण के लिए- भावित् में भूतार्थ में निष्ठा द्वारा भू धातु से क्त प्रत्यय होकर भावितः रूप सिद्ध होता है।

भावितः- (पैदा किया गया)
भू-णिच (हेतुमति च)
भू-णिच् (हल., चुटू., तस्य.)
भू-इ (अचोञ्णिति)
भौ-इ (एचोऽयवायावः)
भ्-आव्-इ (सनाद्यन्ताधातवः)
भ्-आव्-इ (निष्ठा)
भ्-आव्-इ-क्त (लश., तस्य.)
भ्-आव्-इ-त (आर्धधातुकस्येड.)
भ्-आव-इ-इट्-त (चुटू., तस्य)
भ्-आव्-इ-त (निष्ठायां सेटि)
भावित (कृत्तद्धित.)
भावित-सु (स्वौजस.)
भावित-सु (उपदेशे., तस्य.)
भावित-स् (ससजुषो रुः)
भावित-रु (उपदेशे., तस्य)
भावित-र् (खरवसानयो.)
भावितः- पु प्र. एकवचन।

42. दृढः स्थूलबलयोः- 7.2.20 दृह हिंसायाम्। स्थूले बलवति च निपात्यते।

सूत्रार्थ- स्थूल और बलवान अर्थ में दृढ़ शब्द का निपातन होता है। निपातन कार्य निम्नांकित हैं:-

1. दृढ धातु से क्त प्रत्यय होने पर इट् आगम का अभाव।
2. दृह (मजबूत होना) संबंधी हकार का तथा दृहि (बढ़ना) संबंधी हकार और नकार का लोप।
3. तथा पर के स्थान पर ढकार होना।

उदाहरण के लिए- दृह् (दृढ़) धातु से निष्ठा द्वारा क्त प्रत्यय हो दृह्त रूप बनने पर इड् अभाव, हकार लोप और पर तकार के स्थान पर ढकार हो-दृढ़ रूप बनता है। तब प्रातिपदिक संज्ञा हो पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में दृढ़ (स्थूल और बलवान) रूप सिद्ध होता है।

दृढ़ः- (दृढ़)	दृढ़ - सु (स्वौजस.)
दृह्-क्त (निष्ठा)	दृढ़-सु (उपदेशे., तस्य)
दृह् -क्त (लश., तस्य.)	दृढ़-स् (ससजुषो रुः)
दृह्-त (निपातन, दृढ़स्थूलवलयोः)	दृढ़-रु (उपदेशे., तस्य.)
दृढ़- (कृत्तद्धित.)	दृढ़-र् (खरवसानयो.)
	दृढ़ः - पु.. प्र. एकवचन।

किन्तु हिंसार्थक दृह् धातु से निष्ठा प्रत्यय परे होने पर निपातन संज्ञा नहीं होगी और न ही यह सूत्र दृढ़ स्थूल. लागू होगा।

उदाहरण के लिए- दृह (हिंसा) धातु से निष्ठा द्वारा क्त प्रत्यय होकर दृह्-त रूप बनने पर हकार को होढ़ से ढकार हो दृढ्-त रूप बना। झषस्तथोर्धोऽधः से तकार को धकार दृऔर फिर ष्टुनाष्टु से ष्टुत्व ढकार हो दृढ-ढ रूप बनता है तब ढो ढे लोप से पूर्व ढकार का लोप हो दृढ प्रातिपदिक बनता है।

दृढ- (हिंसा किया हुआ)	दृढ- (कृत्तद्धित.)
दृह्-क्त (निष्ठा)	दृढ-सु (स्वौजस.)
दृह्-क्त (लश., तस्य)	दृढ-सु (उपदेशे., तस्य.)
दृह्-त (हो ढः)	दृढ-स् (ससजुषो रुः)
दृढ्-त (झषस्तथोर्धोऽधः)	दृढ-रु (उपदेशे., तस्य.)
दृढ-ध (ष्टुनाष्टुः)	दृढ-र् (खरवसानयो.)
दृढ्-ढ (ढो ढे लोपः)	दृढः - पु. प्र. एकवचन।

43. दधातेर्हिः 7.4.2 तादौ किति। हितम्।

अनुवृत्ति-द्यति स्यति. सूत्र से ति और किति की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ - तकारादि कित प्रत्यय परे होने पर धा (धारण या पोषण करना) धातु के स्थान पर 'हि' आदेश होता है। अनेकाल् होने के कारण अनेकाल्शित्सर्व. परिभाषा से यह आदेश संपूर्ण धा धातु के स्थान पर होता है।

उदाहरण के लिए- धा धातु से भूतार्थ में निष्ठा द्वारा क्त प्रत्यय होकर धा-त रूप बनता है। यहाँ त प्रत्यय कित् है और तकारादि भी, अतः उसके परे रहते प्रकृत सूत्र द्वारा धा के स्थान पर हि आदेश होकर हि-त प्रातिपदिक बनता है। तब विभक्ति कार्य हो नपुंसक प्रथमा एकवचन में हितम् रूप सिद्ध होता है।

हितम् - (धारण किया हुआ)	हित-सु (स्वौजस.)
धा-क्त (निष्ठा)	हि-सु (स्वमोर्न.)
धा-क्त (लश., तस्य.)	हित-अम् (अतोऽम्)
धा-त (दधातेर्हि.)	हित-अम् (अमिपूर्वः)
हि-त (कृत्तद्धित.)	हितम्-नपुं. प्र. एकवचन।

44. दो दद्घोः- 7.4.48 घुसंज्ञकस्य 'दा' इत्यस्य 'दद्' स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्। दत्तः।

अनुवृत्ति- यहाँ द्यतिस्यति से ति और किति की अनुवृत्ति की गयी।

सूत्रार्थ- तकारादि कित् प्रत्यय परे होने पर घु संज्ञक दा धातु के स्थान पर दद् आदेश होता है।

दत्तः - (दिया हुआ)	दत्त-सु (स्वौजस.)
दा-क्त (निष्ठा)	दत्त-सु (उपदेशे., तस्य.)
दा-क्त (लश., तस्य.)	दत्त-स् (ससजुषो रुः)
दा-त (दो दद्घोः)	दत्त-रु (उपदेशे., तस्य.)
दद्-त (खरि च)	दत्त-र, (खरवसानयो.)
दत्-त (कृत्तद्धित.)	दत्तः - पु. प्र. एकवचन

45. लिटः कानज्वा- 3.2.106 चक्राणः।

सूत्रार्थ- लिट् के स्थान पर विकल्प से कानच् का आदेश होता है। यह आदेश छन्दसिलिट् परिभाषा से छन्द के विषय में ही होता है। कानच् में केवल आन ही शेष रहता है। तङानावात्मनेपदम् से आत्मने पद संज्ञा होने के कारण कानच् आत्मनेपदी धातुओं से ही होता है।

उदाहरण के लिए- कृ धातु से लिट् लकार में लिट् होकर कृ लिट् रूप बनने पर प्रकृत सूत्र द्वारा कानच् होकर कृ-आन् रूप बनता है।

चक्राणः- (करने वाला)	क्-अ-र्-कृ-आन (हलादिशेषः)
कृ-लिट् (छन्दसि लिट्)	क्-अ-कृ-आन (कुहोश्चुः)
कृ-लिट् (लिटः कानज्वा)	च्-अ-कृ-आन (इकोयणचि)
कृ-कानच् (हल., लश., तस्य.)	च्-अ-क्-र्-आन (रषाभ्यांनोणः)
कृ-आन (लिटिधातो.)	च्-अ-क्-र्-आण् (कृत्तद्धित)
कृ-कृ-आन (पूर्वोऽभ्यासः)	चक्राण-सु (स्वौजस, उपदेशे., तस्य.)
कृ-कृ-आन (उरत्)	चक्राण-स् (ससजुषो रुः)
क्-अ-कृ-आन (उरणरपरः)	चक्राण-रु (उपदेशे., तस्य.)
	चक्राण-र् (खरवसानयो.)
	चक्राणः- पु. प्र. एकवचन।

46. क्वसुश्च - 3.2.107 लिटः कानच् क्वसुश्च वास्तः। तङानावात्मनेपदम्। चक्राणः।

सूत्रार्थ-लिट् लकार के स्थान पर क्वसु आदेश भी होता है।

उदाहरण के लिए- परस्मैपदी गम् धातु से लिटः कानज्वा की सहायता से लिट् प्रत्यय होता है। यहाँ गम् + लिट् रूप बनने पर प्रकृत सूत्र क्वसु. से लिट् के स्थान पर क्वसु का आदेश होता है। तब रूप बनता है गम् + क्वसु। यहाँ 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' से गम्, धातु को द्वित्व होकर गम्-गम्-वस् रूप बनता है। पुनः पुर्वोऽभ्यासः से अभ्यास संज्ञा होकर हलादिशेषः से पूर्वगम् के मकार का लोप हो ग-गम्-वस् रूप बनने पर कुहोश्चुः से प्रथम गकार के स्थान पर जकार आदेश हो ज-गम्-वस् रूप बना। इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

47. म्वोश्च- 8.2.65 मान्तस्य धातोर्नस्वं म्वोः परतः। जगन्वान्।

अनुवृत्ति- यहाँ मो नो धातोः की अनुवृत्ति की गयी है।

सूत्रार्थ- मकार और वकार परे होने पर मकारान्त धातु के मकार के स्थान पर नकार आदेश होता है। अलोऽन्त्यस्य परिभाषा से यह आदेश मकार के स्थान पर ही होता है।

उदाहरण के लिए- ज-गम्-वस् में वकार होने के कारण प्रकृत सूत्र म्वोश्च द्वारा ज-गम् के मकार के स्थान पर नकार आदेश होकर जगन् वस् प्रातिपदिक बनेगा।

जगन्वान् - (जाने वाला)	ज-गन्-वस् (कृत्तद्धित.)
गम्-लिट् (छन्दसिलिट्)	जगन्वस् (स्वौजस.)
गम्-लिट् (क्वसुश्च)	जगनवस्-सु (उपदेशे., तस्य)

गम्-क्वसु (लश., उपदेश., तस्य.)	जगन्वस्-स् (उगिदचां सर्वनाम)
गम्-वस् (लिटिधातोरन्.	जगन्व-नुम्-स्-स् (हल., उपदेशे., तस्य.)
गम्-गम्-वस् (पूर्वोऽभ्यासः)	जगन्वन्-स्-स् (सान्तमहतः संयोगस्य)
गम्-गम्-वस् (हलादिशेषः)	जगन्वानस् स् (हल्ङ्याभ्यो दीर्घ)
ग-गम्-वस् (कुहोश्चुः)	जगन्वान्स (संयोगान्तस्यलोपः)
ज-गम्-वस् (म्वोश्च)	जगन्वान् - पु. प्र. एकवचन।

48. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे- 3.2.124 अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः। शबादिः। पचन्तं चैत्रं पश्य।

सूत्रार्थ- अप्रथमान्त समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान पर शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं। शतृ और शानच् दोनों शित् हैं। अतः धातु से विहित होने के कारण ये तिङ्शित् सार्वधातुकम् परिभाषा से सार्वधातुक हैं। इसलिए इनके परे रहते यथा प्राप्त शप् आदि विकरण होते हैं।

उदाहरण के लिए -'पचन्तं चैत्रं पश्य' में द्वितीया विभक्ति के समानाधिकरण होने के कारण पच् धातु से वर्तमान सूत्र लटः शतृ. द्वारा लट् के स्थान पर शतृ (अत्) प्रत्यय होकर पच्-शतृ = पच्-अत् रूप बनता है। तब कर्तरिशप् से शप् आगम होकर अतोगुणे. से पररूप एकादेश होकर पचत प्रातिपदिक बनता है।

पश्चात् शपशयनोर्नित्यम् से नुम् आगम होकर द्वितीया एकवचन में "पचन्तम्" रूप सिद्ध होता है।

पचन्तं चैत्रं पश्च - (पकाते हुए चैत्र को देखो)

	पच्-अ-त् (शपशयनोर्नित्यम्)
पच्-लट् (लटः शतृ.)	पच्-अ-नुम्-त् (हल.,उपदेशे., तस्य.)
पच्-शतृ (लश., उपदेशे., तस्य.)	पच्-अ-न्-त् (कृत्तद्धित.)
पच्-अत् (कर्तरिशप्)	पचन्त्-अम् (स्वौजस.)
पच्-शप्-अत् (लश., हल., तस्य.)	पचन्त-अम् (अमिपूर्वः)
पच्-अ-अत् (अतोगुणे)	पचन्तम्-पु. द्वि. एकवचन।

49. आने मुक्- 7.2.82 अदन्तांगस्या मुमागमः स्यादाने परे। पचमानं चैत्र पश्य। लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात्प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्। सन् द्विजः।

सूत्रार्थ- अकारान्त के पश्चात् आन होने पर मुक् का आगम होता है।

पचमानं चैत्रं पश्य- (पकाते हुए चैत्र को देखो)

पच्-शानच् (लटः शतृ.)

पच्-शानच् (लश., हल., तस्य.)

पच्-आन (कर्तरि शप्)

पच् शप्-आन (लश., तस्य., हल., तस्य.)

पच्-अ-आन (आने मुक्)

पच-मुक-आन (हल., उपदेशे., तस्य.)

पच-म्-आन (कृत्तद्धित.)

पचमान-सु (स्वौजसम. स्वमो., अतो.)

पचमान-अम् (अमिपूर्वः)

पाचमानम् - पु. द्वि. एकवचन।

सन् द्विजः- (श्रेष्ठ ब्राह्मण)

अस्-लट् (वर्तमाने लट्)

अस्-शतृ (लट् शतृ.)

अस्-शतृ (लश., उपदेशे., तस्य.)

अस्-अत् (श्नसोरल्लोपः)

स्-अत् (कर्तरिशप्)

स्-शप्-अत् (लश., हल., तस्य.)

स्-अ्-अत् (अतोगुणे, कृत्तद्धित.)

स्-अत् (शप्श्यनो.)

स्-अ-नुम्-त् (उपदेशे., हल., तस्य.)

स-न-त्-सु (स्वौजस., उपदेशे. तस्य.)

सन्-त्-स् (हल्ङ्याब्भ्यो.)

सन् त् (संयोगान्तस्य लोपः)

सन्-पु. प्र. एकवचन।

50. विदेः शतुर्वसुः 7.1.36 वेतेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा। विदन्। विद्वान्।

सूत्रार्थ- विद् (जानना) धातु के पश्चात् शतृ के स्थान पर विकल्प से वसु आदेश होता है। अनेकाल् होने से यह आदेश सम्पूर्ण शतृ के स्थान पर होता है। यहाँ वसु का उकार इत्संज्ञक है। उगित् होने से नुम् का आगम होता है।

51. तौ सत्- 3.2.127 तौ-शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः।

सूत्रार्थ- (लटः शतृ. में विद्यमान) शतृ और शानच् को सत् कहते हैं। यह संज्ञा विधायक सूत्र है।

उदाहरण के लिए- यहाँ वेत्ति (जानता है) इस विग्रह में विद्-लट् (वर्तमानेलट्) से रूप बनने पर लटः शतृशानचा. से लट् के स्थान पर शतृ (अत्) हो विद्-अत् रूप बनता है तब विदेः शतुर्वसु से शतृ (अत्) को विकल्प से वसु (वस्) होकर विद्-वस् = विद्वस प्रातिपदिक बनता है।

विद्वान- (ज्ञाता या जानकार)

विद्-लट् (वर्तमानेलट्)

विद्-वस्-सु (उपदेशे., तस्य.)

विद्-वस्-स् (उगितचां.)

विद्-लट् (लटः शतृ.) विद्-व-नुम्-स्-स् (हल., उपदेशे., तस्य.)

विद्-शतृ (विदेः शतुर्वसु) विद्-व-न्-स्-स् (सान्तमहतः संयोगस्य)

विद्-वसु (उपदेशे., तस्य.) विद्व्-आ-न्-स्-स् (हल्ङ्याब्भ्यो.)

विद्-वस (कृत्तद्धित.) विद्वानस् - (संयोगान्तस्य.)

विद्-वस् (स्वौजस.) विद्वान्- पु. प्र. एकवचन।

52. लृटः सद्वा- 3.3.14 लृटः शतृशानचौ वा स्तः। व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाऽप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम्। करिष्यन्तं करिष्यमाणं व पश्य।

सूत्रार्थ- जब प्रथमा विभक्ति से समानाधिकरण होता है तब लृट के स्थान पर विकल्प से शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं। यह व्यवस्थित विभाषा है। अर्थात् यह कार्य किसी स्थान में होता है और किसी स्थान में नहीं। यही व्यवस्था है। इसलिए इसे व्यवस्थित विभाषा कहा जाता है। प्रथमा से भिन्न किसी अन्य विभक्ति के समानाधिकरण में होने पर, उत्तरपद होने पर सम्बोधन लक्षण तथा हेतु में ये प्रत्यय नित्य होते हैं।

उदाहरण के लिए-करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य इस विग्रह में प्रकृत सूत्र द्वारा लृट् के स्थान पर शतृ और शानच् प्रत्यय होकर क्रमशः कृ-शतृ (अत्) और कृ-शानच (आन) रूप बनते हैं। तब स्यतासीलृलुटोः से स्य और आर्धधातुकस्येड. से इट् आगम होकर आदेश प्रत्ययोः से दन्त्य सकार को मूर्धन्य सकार होकर क्रमशः करिष्यन्त और करिष्यमाण प्रातिपदिक बनते हैं।

करिष्यन्तं पश्य- (करने वाले को देखो) करिष्यमाणं पश्य- (करने वाले को देखो)

कृ-लृट (लृटः सद्वा) कृ-लृट् (लृटः सद्वा)

कृ-शतृ (लश., उपदेशे., तस्य.) कृ-शानच् (लश., हल., तस्य.)

कृ-अत् (स्यतासी.) कृ-आन् (स्यतासी.)

कृ-स्य-अत् (सार्वधातुकार्ध.) कृ-स्य-आन (सार्वधातुकाऽऽर्ध.)

क्-अर्-स्य्-अत् (अतोगुणे.) क्-अर्-स्य-आन (आर्धधातुकस्ये.)

क्-अर्-स्य्-अत (आर्धाधातुकस्येड्.) क-अर्-इट्-स्य-आन (चुटू., तस्य.)

क्-अर्-इट्-स्य्-अत् (चुटू., तस्य.) क्-अर्-इ-स्य-आन (आने मुक्)

क्-अर्-इ-स्य्-अत् (आदेश प्रत्ययोः) क्-अर्-इ-स्य-मुक्-आन (हल., उपदेशे., तस्य.)

क्-अर्-इ-ष्य्-अत् (कृत्तद्धित.) क्-अर्-इ-स्य-म्-आन (आदेश प्रत्ययोः)

करिष्यत् -सु (स्वौजस., उपदेशे., तस्य.) क्-अर्-इ-ष्य-म्.आन (कृत्तद्धित.)

करिष्यत्-स् (उगिदचां.)	करष्यिमान- (निपातनात् णत्वम्)
करिष्य-नुम्-त्-स् (हल., उपदेशे., तस्य)	कारिष्यमाण-अम् (स्वोजसम.)
करिष्यन्त्-स् (हल्ङ्याब्भ्यो.)	करिष्यमाण-अम् (अमिपर्वू-)
करिष्यन्त्-अम्	करिष्यमाणम्- पु द्वि. एकवचन।
करिष्यन्तम् - पु. द्वि एकवचन।	

53. आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु- 3.2.134 क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः।

सूत्रार्थ- इस सूत्र से लेकर भ्राज-भास 3.2.177 से विहित क्विप् प्रत्यय तक सभी प्रत्यय तच्छील (स्वभाव से किसी कार्य में प्रवृत्त होना), तद्धर्म (बिना स्वभाव भी किसी कार्य में प्रवृत्त होना) और तत्साधुकारिता (किसी कार्य को सुन्दरता से करना) इन अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। 'कर्तरिकृत' परिभाषा से ये प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में ही होते हैं।

54. तृन्- 3.2.135 कर्ताकटान्।

सूत्रार्थ- तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्त्ता अर्थ में धातु से तृन प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए- कर्ता कटान् में कटान् करोति तच्छीलः (चटाई बनाना जिसका स्वभाव है) इस अर्थ में आक्वे. और तृन् की सहायता से कर्ता अर्थ में कृ धातु से तृन् प्रत्यय होकर कृ-तृ रूप बनता है। यहाँ आर्धधातुक गुण होकर क्-अर्-तृ प्रातिपदिक बनने के पश्चात् सुप् आदि विभक्ति कार्य होकर पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में कर्ता रूप सिद्ध होता है।

कर्ता - (करने वाला)	क्-अर्-तृ-स् (ऋदुशनस्पुरूदंशोऽनेहसां च)
कृ-तृन् (आक्वे., तृन)	क्-अर्-त-अनङ्-स. (हल., उपदेशे, तस्य.)
कृ-तृन् (हल., तस्य.)	कर्तन्-स् (अपतृनतृचस्वसृनप्तृ.)
कृ-तृ (सार्वधातु.)	कर्तान्-स् (हल्ङ्याब्भ्यो.)
क्-अर्-तृ (कृत्तद्धित.	कर्तान्- (नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य)
क्-अर्-तृ-सु (स्वौजस.)	कर्ता पु. प्र. एकवचन।
क्-अर्-तृ-सु (उपदेशे. तस्य.)	

55. जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ठ-वृङः षाकन् 3.2.155

अनुवृत्ति-यहाँ आक्वेस्तछील. की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ-तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में जल्प् (बोलना), भिक्ष्

(माँगना), कुट्ट (कूटना), लुण्ट् (लूटना) और वृङ (सेवा करना, पूजा करना) इन पाँच धातुओं से षाकन् प्रत्यय होता है। इसके बाद अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

56. षः प्रत्ययस्य – 1.3.6 प्रत्ययस्यादिः षः इत्संज्ञः स्यात्। जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः। वराकी।

सूत्रार्थ- प्रत्यय का आदि षकार इत्संज्ञक होता है।

उदाहरण के लिए- जल्पति तच्छीलः (बोलने के स्वभाव वाला) इस अर्थ में जल्पभिक्ष. सूत्र द्वारा जल्प् धातु से षाकन् प्रत्यय होकर जल्प-षाकन् रूप बनने पर षः प्रत्ययस्य से आदि से षकार लोप हो जल्प् आक प्रातिपदिक बनता है। इस स्थिति में सुप् आदि विभक्ति कार्य हो पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में जल्पाकः रूप सिद्ध होता है।

जल्पाक : - (अधिक बोलने वाला)	जल्पाक-सु (उपदेशे., तस्य.)
जल्प्-षाकन् (जल्पभिक्षकुट्ट.)	जल्पाक-स् (ससजुषो रुः)
जल्प्-षाकन् (हल., तस्य.)	जल्पाक् -रु (उपदेशे., तस्य.)
जल्प्-षाक (षः प्रत्ययस्य)	जल्पाक-र् (खरवसानयो.)
जल्प्-आक (कृत्तद्धित.)	जल्पाकः- पु. प्र. एकवचन।
जल्पाक-सु (स्वौजस.)	

नोट- इसी प्रकार-भिक्षाकः। लुण्टाकः। कुट्टाकः। वराकः रूप भी सिद्ध होते हैं।

57. सनाशंसभिक्ष उः 3.2.168 चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

सूत्रार्थ- तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्त्ता अर्थ में सन् प्रत्ययान्त, आशंस् और भिक्ष् धातुओं से उ प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए-चिकीर्षुः- (किसी कार्य को करने की इच्छा वाला) यहा पहले कृ धातु से इच्छा अर्थ में धातोःकर्मणः से सन् प्रत्यय हो कृ-स रूप बनने पर सन् (स) प्रत्यय के आर्धधातुक होने के कारण आर्धधातुकस्येड. से उसे इट् आगम प्राप्त होता है, किन्तु इकोझल से प्रकृत स्थल में सन् की कित् संज्ञा हो जाने पर ग्क्डिति से उसका निषेध हो जाता है। अज्झनगमां. से अजन्त धातु कृ के ऋकार को दीर्घ ऋकार होकर कृ-स रूप बनने पर ऋत्इद्धातोः से ऋकार के स्थान पर उरण्परः की सहायता से इर आदेश हो क्-इ-र्-स रूप बनेगा पुनः सन्यडो से द्वित्व होकर क्-इ-र्-क्-इ-र्-स बनने पर हलादिः से अभ्यास (पूर्ववर्ती क्-इ-र्) के रकार का लोप होकर क्-इ-क्-इ-र्-स रूप बनता है। इस स्थिति में कुहोश्चुः से अभ्यास के ककार को चकार होकर च्-इ-क्-इ-र्-स चिकिर्-स बनने पर हलिच से धातु की उपधा ककारोत्तरवर्ती इकार को दीर्घ ईकार हो चिकीर्-स रूप बनेगा। यहाँ आदेश प्रत्ययोः से प्रत्ययावयव सकार को मूर्धन्य

षकार हो चिकीर्ष प्रातिपदिक बनता है। तब कर्ता अर्थ में सनाशंस. द्वारा उ प्रत्यय हो चिकीर्ष-उ रूप सिद्ध होता है।

चिकीर्षः- (करने की इच्छा करना)
कृ-स् (धातोकर्मणः समान.)
कृ-सन् (हल., तस्य.)
कृ-स (अज्झनगमां सनि)
कृ-स (ऋत इद्धातोः उरण रपरः)
क्-इर्-स (सन्यडोः)
क्-इर्-क्-इर्-स (कुहोश्चु)
च्-इ-क-इ-र्-स (हलि च)
च्-इ-क्-ईर-स (आदेश प्रत्ययोः)
च्-इ-क्-ई-र्-ष (सनाशंसभिक्ष उः)
चिकीर्ष-उ (अतोलोपः)
चिकीर्ष्-उ (कृत्तद्धित.)
चिकीर्षु-सु (स्वौजस., उपदेश., तस्य.)
चिकीर्षु-स् (ससजुषो रुः, उपदेशे., तस्य.)
चिकीर्षु-र् (खरवसानयों.)
चिकीर्षुः - पु. प्र. एकवचन।

58. भ्राज-भास-धुर्वि-द्युतोर्जि-पृ-जु-ग्रावस्तुवः क्विप्- 3.2.177 विभ्राट्। भाः।

सूत्रार्थ- तच्छील, तद्धर्म और तत्सधुकारी कर्ता अर्थ में भ्राज् (भ्वादि., चमकना), भास् (भ्वादि. चमकना), धुर्व (भ्वादि., दुःख देना), द्युत (भ्वादि., चमकना), ऊर्ज्. (चुरादि., शक्तिमान होना) पृ (पालन पोषण करना, भरना) जु तथा ग्राव उपपद पूर्वक स्तु (स्तुति करना) इन आठ धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए- वि पूर्वक भ्राज् धातु से तच्छील कर्ता अर्थ में प्रकृत सूत्र द्वारा क्विप् होकर विभ्राज-व् रूप बनता है। यहाँ 'वेरपृक्तस्य' से प्रत्यय के वकार का लोप होकर विभ्राज् रूप बनने पर प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा के एकवचन में विभ्राट् रूप (विशेष चमकना जिसका स्वभाव है) सिद्ध होता है।

विभ्राटः- (अधिक शोभने वाला)
वि-भ्राज-क्विप् (भ्राज,-भास-धुर्वि. आक्वे)
वि-भ्राज्-क्विप् (लशक्व., हल., तस्यलोपः)
वि-भ्राज्-वि (उपदेशे., तस्य.)
वि-भ्राज्-व् (वेरपृक्तस्य.)
वि-भ्राज् (व्रश्चभ्रस्ज.)
वि-भ्राष् (झलांजशोऽन्ते)
विभ्राड्- (वाऽवसाने)
वि-भ्राट् (कृत्तद्धित.)
वि-भ्राट-सु (स्वौजस.)
वि-भ्राट-सु (उपदेशे., तस्य.)
वि-भ्राट-स् (हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्.)
विभ्राट् -पु. प्र. एकवचन।

इसी प्रकार भास् से 'भाः', 'वि' पूर्वक 'द्युत्' से 'विद्युत', ' ऊर्ज्., से 'ऊर्क', 'पृ' से 'पूः' तथा 'ग्राव' पूर्वक 'स्तु' से 'ग्रावस्तुत्' (पत्थर के गुण गाना जिसका स्वभाव

है) रूप बनते हैं। इसी भांति 'धुर्व्' धातु से क्विप् और उसका सर्वापहार लोप होकर 'धुर्व' रूप बनेगा। इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

59. राल्लोपः- 6.4.21 रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति। धूः। विद्युत्। ऊर्क्। पूः। दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवदेदीर्घः। जूः। ग्रावस्तुत्।

अनुवृत्ति- च्छ्वोःशूडनुनासिके च से च्छवोः तथा अनुनासिकस्य क्विझलोः से क्विझलोःक्ङिति की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- क्वि (क्विप्) और झलादि कित्, ङित् प्रत्यय परे होने पर रकार के पश्चात् च्छ् तथा व् का लोप होता है।

उदाहरण के लिए- यहाँ धुर्व धातु से तच्छील कर्ता अर्थ में भ्राजभास. द्वारा क्विप् प्रत्यय होकर धुर्व्-व् रूप बनने पर वेरपृक्तस्य से अपृक्त वकार का लोप हो धुर्व् रूप सिद्ध होता है। यहाँ प्रत्ययलोपे परिभाषा से राल्लोपः सूत्र द्वारा धुर्व् के वकार का लोप होकर धुर् प्रातिपदिक बनने पर सुबादि विभक्ति कार्य होकर पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में धूः रूप सिद्ध होता है।

धूः - (धुरी)

धुर्व्-क्विप् (भ्राज-भास-धुर्वि, आक्वे.)	धुर्-सु (स्वौजस.)
धुर्व्-क्विप् (लशक्व., हल., तस्यलोपः)	धुर्-सु (उपदेशे., तस्य.)
धुर्व्-वि (उपदेशे., तस्यलोपः)	धुर्-स् (हल्डयाब्भ्यो.)
धुर्व्-व् (वेरपृक्तस्य)	धुर्- (वोरूपधाया.)
धुर्व्- (प्रत्ययलोपे., राल्लोपः)	धूर्- (खरवसानयो)
धुर् - (कृत्तद्धित.)	धूः- पु. प्रथमा एकवचन।

वा. क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटपुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च। वक्तीति वाक्।

वार्तिकार्थ- वच् (बोलना), प्रच्छ् (पूछना), आयत पूर्वक स्तु, कट पूर्वक प्रु (जाना), जु और श्रि (आश्रय करना)। इन छः धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है तथा सभी में अच् को दीर्घ होता है किन्तु सम्प्रसारण नहीं होता। दीर्घादेश तो सब में होता है किन्तु सम्प्रसारण का निषेध केवल प्रच्छ् में ही होता है, क्योंकि उसी को वह प्राप्त है।

उदाहरण के लिए- जु धातु से क्विप् होने पर दीर्घ होकर जू रूप बनता है तब प्रातिपदिक संज्ञा हो प्रथमा एकवचन में पु. जूः रूप सिद्ध होता है।

जूः- (रोगी, ज्वरी)

जु-क्विप् (भ्राज-भास धुर्वि.)	जू-सु (उपदेशे., तस्य.)

जु-क्विप् (हल., लश., उपदेशे., तस्य. र्वोरुप.) जू-स् (ससजुषो रुः)
जू-व् (वेरपृक्तस्य, क्विब्वचि.) जू-रु. (उपदेशे., तस्य.)
जू- (कृत्तद्धित.) जू-र् (खरवसानयो.)
जू-सु (स्वौजस.) जूः - पु. प्र. एकवचन।

इसी प्रकार क्विप् प्रत्यय और दीर्घादेश होकर वाक्, आयतस्तुः, कटप्रुः और श्रीः रूप बनते हैं।

60. दाम्नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दशः-नह-करणे-3.2.182 दाबादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे। दात्यनेन दात्रम्। नेत्रम्।

अनुवृत्ति- यहाँ धः कर्मणि ष्ट्रन से ष्ट्रन की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- करण कारक में दाप् (काटना), नी (ले जाना), शस् (मारना), यु (मिलाना), युज् (जोड़ना), स्तु (स्तुति करना), तुद् (पीड़ा पहुँचाना), सि (बन्धन), सिच, (सीचना), मिह् (मीचना), पत् (गिरना), दश् (डँसना) और नह् (बाँधना) इन तेरह धातुओं से ष्ट्रन प्रत्यय होता है।

ष्ट्रन का षकार और नकार इत्संज्ञक है। षकार का लोप होने पर टकार तकार के रूप में स्वमेव हो जाता है। (क्योंकि मूर्धन्य षकार के कारण ही त का ट हुआ था) और इस प्रकार त् र = त्र शेष रह जाता है।

उदाहरण के लिए- दाति अनेन (इससे काटा जाता है) इस अर्थ में (दाप्) दा धातु से ष्ट्रन होकर दात्र रूप बनता है। यहा त्र (ष्ट्रन) प्रत्यय वलादि आर्धधातुक है अतः आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इडागम प्राप्त होता है। इस अवस्था में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

61. ति-तु-त्र-तथ-सि-सु-सर-क-सेषु च– 7.2.9 एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्त्रम्। सेत्रम्। मेंढ्रम्। सेक्त्रम। पत्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

अनुवृत्ति- यहाँ नेड्वशिकृति. से न तथा इट् की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ-ति (क्तिन और क्तिच्), तु (तुन्), त्र (ष्ट्रन), त (तन्), थ (क्थन्), सि (क्सि), सु, सर (सरन्), क (कन्) और स- इन दस प्रत्ययों के परे होने पर इट का आगम नहीं होता है।

उदाहरण के लिए- दात्र में त्र परे होने के कारण प्रकृत सूत्र से प्राप्त इडागम निषेध हो जाता है। तब दात्र की प्रातिपदिक संज्ञा होकर नपुंसकलिंग प्रथमा एकवचन में दात्रम् रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार ष्ट्रन करके इडागम आदि निषेध होकर- शस् से शस्त्रम, यु से योत्रम, युज् से योक्त्रम्, स्तु से स्तोत्रम, तुद् से तोत्त्रम्, सि से सेत्रम, सिच् से

सेक्त्रम्, मिह् से मेढ्रमं, पत् से पत्त्रम्, दश् से दंष्ट्रा, नह् से नद्ध्रा और नी से नेत्रम् रूप सिद्ध होंगे।

दात्रम् - (दाती)	शस्त्रम् - (शस्त्र)
दा-ष्ट्रन् (दाम्नीशसयु.)	शस्-ष्ट्रन् (दाम्नीशसयु.)
दा-ष्ट्रन् (षः प्रत्ययस्य.)	शस्-ष्ट्रन् (षः प्रत्ययस्य, तस्यलोपः)
दा-त्रन् (हल., तस्य.)	शस्-त्रन् (हलन्त्यम्, तस्यलोपः)
दा-त्र (आर्धधातुकस्येड्, तितुत्रत.)	शस्-त्र (आर्धधातुकस्येड., तितुत्रत.)
दा-त्र (कृत्तद्धित.)	शस्-त्र (कृत्तद्धित.)
दात्र-सु (स्वौजस.)	शस्त्र- (स्वौजस.)
दात्र-सु (स्वमोर्नपुंसकात्)	शस्त्र-सु (स्वमोर्नपुंसकात्)
दात्र-अम् (अतोऽम्)	शस्त्र- (अतोऽम्)
दात्र-अम् (अमिपर्वूः)	शस्त्र-अम् (अमिपूर्वः)
दात्रम् - नपुं. प्र. एकवचन	शस्त्रम् न. प्र एकवचन।

62. अर्ति-लू-धू-सू-खन-सह-चर-इत्रः - 3.2.184 अर्त्यादिभ्यः ष्ट्रन स्यात्करणेऽर्थे। अरित्रम्। लवित्रम्। धवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्।

अनुवृत्ति- यहाँ दाम्नीशस. से करणे की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- करण कारक में-ऋ (जाना), लू (काटना), धू (कँपाना), सू (प्रेरणा देना), खन् (खनना), सह् (सहना) और चर् (चलना या खाना) इन सात धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए- करण कारक में ऋ धातु से वर्तमान सूत्र द्वारा इत्र प्रत्यय होकर ऋ-इत्र बनने की स्थिति में सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयो से उरणरपर की सहायता से गुण अर् होने पर अर्-इत्र = अरित्र रूप बनता है। तब प्रातिपदिक संज्ञा तथा सुप् आदि विभक्ति कार्य होकर नपुंसक लिंग प्रथमा एकवचन में अरित्रम् रूप सिद्ध होता है।

अरित्रम् - (पतवार)	चरित्रम्, - (चरित्र)
ऋ-इत्र (अर्तिलू.)	चर्-इत्र (अर्ति.)
ऋ-इत्र (सार्वधातुकाऽऽर्धधातु., उरणरपरः)	चर्-इत्र (कृत्तद्धित.)
अर्-इत्र (कृत्तद्धित.)	चरित्र-सु (स्वौजस.)
अरित्र-सु (स्वौजस.)	चरित्र-सु (स्वमोर्नपुंसकात्)

अरित्र-सु (स्वमोर्नपुंसकात्)

अरित्र-अम् (अतोऽम्)

अरित्र-अम् (अमिपूर्वः)

अरित्रम्- नपुं. प्र. एकवचन।

चरित्र-अम् (अतोऽम्)

चरित्र-अम् (अमिपूर्वः)

चरित्रम्-नपुं. प्र. एकवचन।

63. पुवः सञ्ज्ञायाम् 3.2.185 करणे पुवः ष्ट्रन स्यात् संज्ञायाम्। पवित्रम्।

अनुवृत्ति- यहाँ दाम्नी. से करणे तथा अर्तिलू. से इत्रः की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- संज्ञा अर्थ में करण कारक में पूङ् (भ्वादि निर्मल करना) और पूञ् (क्रयादि. निर्मल करना) से इत्र प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए- पूयते अनेन (इससे शुद्ध किया जाता है) इस विग्रह में पू (पूङ्, पूञ्) से इत्र प्रत्यय होकर पू-इत्र रूप बनता है। यहाँ सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः से पू के उकार का गुण ओकर तथा एचोऽयवायावः से ओकार के स्थान पर अव आदेश होकर प्-अव्-इत्र = पवित्र प्रातिपदिक बनता है। तब नपुंसक लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन में पवित्रम् रूप सिद्ध होता है।

पवित्रम्- (कुश से बना हुआ, दर्भ)

पू-इत्र (अर्तिलू., पुवः संज्ञायाम्)

पू-इत्र (सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः)

प्-ओ-इत्र (एचोऽयवायावः)

प्-अव्-इत्र (कृत्तद्धित.)

पवित्र-सु (स्वौजस.)

पवित्र-सु (स्वमोर्नपुंसकात्)

पवित्र-अम् (अतोऽम्)

पवित्र-अम् (अमिपूर्वः)

पवित्रम् नपुं. प्रथमा एकवचन।

—इति पूर्वकृदन्तप्रकरणम्—

उत्तर कृदन्त

1. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् 3.3.10– क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति।

सूत्रार्थ- क्रियार्थ क्रिया के उपपद रहने पर भविष्यत् अर्थ में धातु से तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

उदाहरण के लिये- कृष्णं द्रष्टुं याति। यहाँ याति क्रिया द्रष्टुं क्रिया के लिए हो रही है। अतः दृश धातु से तुमुन् प्रत्यय लगकर-द्रष्टुम् रूप सिद्ध होता है।

द्रष्ट्म् - (देखने के लिए)
दृश्-तुमुन् (तुमुन्ण्वुलौ.)
दृश्-तुमुन् (उपदेशे. हल., तस्यलोपः)
दृश्-तुम (सृजिदृशोर्झल्य.)
दृश्-तुम् (मिदऽचोऽन्त्यात्परः)
दृ-अम्-श्-तुम् (इकोयणचि)
दर्-अम्-श्-तुम् (हल्., तस्य.)
दर्-अ-श्-तुम् (व्रश्चभ्रस्जसृजमृज. षः)
दर्-अ-ष्-तुम् (ष्टुनाष्टुः .
द्रष्टुम्।

दर्शकः- (देखने वाला)
दृश-ण्वुल् (तुमुन्ण्वलौ.)
दृश्-ण्वुल् (चुटू, हलन्त्यम् तस्यलोपः)
दृश-वु (युवोरनाकौ)
दृश-अक (पुगन्तलघूपधस्य च, उरण रपरः)
द्-अर्-श्-अक् (कृत्तद्धितसामासाश्च)
दर्शक-सु (स्वौजस.)
दर्शक-सु (उपदेश., तस्य.)
दर्शक-स् (ससजुषो रुः, उपदेशे., तस्य.)
दर्शक-र् (खरवसान.)
दर्शकः- पु. प्रथमा एकवचन।

2. कालसमयवेलासु तुमुन् 3.3.167- कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

सूत्रार्थ-काल, समय और वेला इन शब्दों के उपपद रहने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए-कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

भोक्तुम्- (खाने के लिए)

भुज्-तुमुन् (कालसमय.)	भोज् -तुम् (चोः कुः)
भुज्-तुमुन् (उपदेशे., हल., तस्य.)	भोग्-तुम (वाऽवसाने)
भुज्-तुम् (पुगन्तलघूपधस्य च)	भोक्तुम्।

3. भावे 3.3.18– सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्ये वाच्ये धातोर्घञ्। पाकः।

सूत्रार्थ- पाक अर्थ में धातु से घञ् प्रत्यय होता है। भाव दो प्रकार का होता है। (1) साध्यावस्थापन्न, (2) सिद्धावस्थापन्न। यहाँ सिद्धावस्थापन्न भाव अभिप्रेत है।

पाकः- (पाक)

पच्-घञ् (भावे)	पाक-सु (स्वौजस.)
पच्-घञ् (लशक्व., हल., तस्य.)	पाक-सु (उपदेशे., तस्य.)
पच्-अ (अत उपधायाः)	पाक-स् (ससजुषोरु)
पाच्-अ (चजोः कुघिण्ण्यतोः)	पाक-रु (उपदेशे., तस्य.)
पाक- (कृत्तद्धित.)	पाक-र् (खरवसानयो.)
	पाकः - पु. प्रथमा एकवचन।

4. अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् 3.3.19- कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात्।

सूत्रार्थ - संज्ञा अर्थ में कर्ता भिन्न कारक (कर्ता कारक को छोड़कर अन्य किसी भी कारक में) धातु से घञ् प्रत्यय होता है। उदाहरण के लिए -रज्यतेऽनेन (इससे रंगा जाता है) इस अर्थ में रञ्ज् धातु से करण कारक में प्रकृत सूत्र द्वारा घञ् प्रत्यय होकर रञ्ज्-अ रूप बनेगा। इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

5. घञि च भावकरणयोः 6.4.27 रञ्जेर्नलोपः स्यात्। रागः अनयोः किम्? रज्यत्यस्मिन्निति रंगः।

सूत्रार्थ- भाव और करण कारक में घञ् प्रत्यय परे होने पर रञ्ज् धातु के नकार का लोप हो जाता है।

उदाहरण के लिए- रञ्ज् धातु में करण कारक में रञ्ज् धातु के बाद घञ् (अ)प्रत्यय आया है। अतः प्रकृत सूत्र से रञ्ज् के नकार का लोप होकर रज् -अ = रज रूप बनता है। यहाँ उपधा वृद्धि और कुत्व आदि होकर राग रूप बनने पर प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा के पुल्लिंग एकवचन में रागःरूप सिद्ध होता है। ध्यान रहे कि रञ्ज् धातु के नकार का लोप भाव और करण कारक में ही होता है अन्य कारकों में नहीं। उदाहरण के लिए रज्यत्यस्मिन् (इसमें रंगा जाता है) इस अर्थ में अधिकरण कारक में पूर्व सूत्र

अकर्तरिच कारके संज्ञायाम् से रञ्ज् धातु से घञ् होकर रञ्ज्-अ रूप बनता है। यहाँ भी रञ्ज् धातु से घञ् प्रत्यय परे है किन्तु रञ्ज् धातु भाव या करण में नहीं है। अतः वर्तमान सूत्र से धातु के नकार का लोप नहीं होता। इस स्थिति में केवल कुत्व और पर सवर्ण होकर रंगः रूप सिद्ध होता है।

रागः (रंग)	रंगः- (रंगभूमि या नाट्यशाला)
रञ्ज् - घञ् (अकर्तरिच.)	रञ्ज्-घञ् (अकर्तरिच.)
रञ्ज्-घञ् (घञि च भावकरणयोः)	रञ्ज्-घञ् (लशक्व., हल., तस्य.)
रज्-घञ् (लशक्व., हल., तस्य.)	रञ्ज्-अ (चजो कु.)
रज्-अ (अत उपधायाः)	रंग-अ (कृत्तद्धित.)
राज् -अ (चजोः कु.)	रंग-सु (स्वौजस.)
राग्-अ (कृत्तद्धित)	रंग-सु (उपदेशे., तस्य.)
राग-सु (स्वौजस.)	रंग-स् (ससजुषो रुः)
राग-सु (उपदेशे. तस्य.)	रंग-रु (उपदेशे., तस्य.)
राग-स् (ससजुषो रुः)	रंग- र् (खरवसानयो.)
राग-रु (उपदेशे., तस्य्)	रंगः- पु. प्रथमा एकवचन।
राग-र् (खरवसानयो.)	
रागः- पु. प्रथमा एकवचन।	

6. निवास-चिति-शरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः **3.3.41**- एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः। उपसमाधानं राशीकरणम्। निकायः । कायः गोमयनिकायः।

सूत्रार्थ- निवास, चिति (चेतना), शरीर और उपसमाधान (राशीकरण-ढेर लगाना) अर्थ में चिञ् (स्वादि., इक्ट्ठा करना) धातु से घञ् (अ) प्रत्यय होता है और आदि वर्ण के स्थान पर ककार होता है। चिञ् के आदि में चकार है अतः उसी के स्थान पर ककार आदेश होता है।

निकायः- (निवास या गृह)	कायः- (शरीर)
नि-चि-घञ् (धातोः, पदरूज., निवास चिति.)	चि-घञ् (निवास चिति.)
नि-कि-घञ् (लशक्व., हल., तस्य,)	कि-घञ् (लश., हल., तस्य.)
नि-कि-अ (सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयो)	कि-अ (सार्वधातु.)
नि-क्-ए-अ (एचोऽयवायावः)	क्-ए-अ (एचो.)

नि-क्अय्.-अ (अत उपधायाः)

निकाय- (कृत्तद्धित.)

निकाय-सु (स्वौजस.)

निकाय-सु (उपदेशे., तस्य.)

निकाय-स् (ससजुषो रुः)

निकाय-रु (उपदेशे., तस्य.)

निकाय-र् (खरवसानयो.)

निकायः - पु. प्रथमा एकवचन।

क्-अय्-अ (अत उपधायाः)

क्-आय-अ (कृत्तद्धित.)

काय-सु (स्वौजस.)

काय-सु (उपदेशे., तस्य.)

काय-स् (ससजुषो रुः)

काय-रु (उपदेशे., तस्य.)

काय-र् (खरवसानयो.)

कायः- पु. प्रथमा एकवचन।

7. एरच् **3.3.56**- इवर्णान्तादच्। चयः। जयः।

अनुवृत्ति- धातोः, भावे और अकर्तरिच कारके संज्ञायाम्। सूत्रस्थ एः धातोः का विशेषण है। अतः उसमें तदन्त विधि हो जाती है।

सूत्रार्थ- भाव और कर्ताभिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय होता है। यह सूत्र घञ् प्रत्यय का बाधक है और सामान्य रूप से इवर्णान्त धातुओं से अच् का विधान करता है।

चयः - (समूह या चुनना)

चि-अच् (एरच्)

चि-अच् (हल., तस्यलोपः.)

चि-अ (सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः)

चे-अ (एचोऽयवायावः)

चय्-अ (कृत्तद्धित.)

चय-सु (स्वौजस.)

चय-सु (उपदेशे., तस्य.)

चय-स् (ससजुषो रुः)

चय-रु (उपदेशे., तस्य.)

चय-र् (खरवसानयो.)

चयः- पु. प्रथमा एकवचन।

जयः- (विजय)

जि-अच् (एरच्)

जि-अच् (हल., तस्यलोपः.)

जि-अ (सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः)

जे-अ (एचोऽयवायावः)

जय्-अ (कृत्तद्धित.)

जय-सु (स्वौजस.)

जय-सु (उपदेशे., तस्य.)

जय-स् (ससजुषो रुः)

जय-रु (उपदेशे., तस्य.)

जय-र् (खरवसानयो.)

जयः- पु. प्रथमा एकवचन।

8. ऋदोरप् **3.3.57**— ऋवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाप्। करः। गरः। यवः। लवः। स्तवः। पवः।

सूत्रार्थ- भाव और कर्ताभिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में ऋकारान्त और उवर्णान्त धातु से अप् प्रत्यय होता है। यह भी घञ् प्रत्यय का बाधक है। यहाँ धातोः, भावे तथा अकर्तरिच. की अनुवृत्ति की गई है।

करः- (हाथ या किरण)

कृ-अप् (ऋदोरप्)

कृ-अप् (हल., तस्यलोपः.)

कृ-अ (सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः)

कर्-अ (कृत्तद्धित.)

कर-सु (स्वौजस.)

कर-सु (उपदेशे., तस्य.)

कर-स् (ससजुषो रुः)

कर-रु (उपदेशे., तस्य.)

कर-र् (खरवसानयो.)

करः- पु. प्रथमा एकवचन।

9. घञर्थे क विधानम् - प्रस्थः। विघ्नः।

वार्तिकार्थ- जिस अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है उस अर्थ में क प्रत्यय भी होता है। भावे और अकर्तरि से भाव और कर्ताभिन्न संज्ञा अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। अतः इन्हीं स्थानों पर वर्तमान वार्तिक से क प्रत्यय का विधान किया जाता है।

उदाहरण के लिए- प्रतिष्ठन्तेऽस्मिन्- इसमें प्रतिष्ठापित होते हैं। इस विग्रह में प्र-पूर्वक स्था धातु से अधिकरण अर्थ में क प्रत्यय होकर प्रस्थः रूप बनता है।

प्रस्थः (सेर भर परिमाण, तोल या पर्वत)

प्र-स्था-क (घञर्थे.)

प्र-स्था-क (लशक्व., तस्य.)

प्र-स्था-अ (आतोलोप इटि च)

प्रस्थ्-अ (कृत्तद्धित.)

प्रस्थ-सु (स्वौजस.)

प्रस्थ-रु (उपदेश., तस्य.)

प्रस्थ-र् (खरवसानयो.)

प्रस्थः- पु. प्रथमा एकवचन।

10. ड्वितः क्त्रिः **3.3.88**—

अनुवृत्ति- धातोः, भावे, अकर्तरिच. की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- यदि धातु का डु इत् हो तो उससे भाव और कर्ताभिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में क्त्रि प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए- पच् (डुपचष्) पकाना, धातु का डु इत् संज्ञक है, क्योंकि आदिर्ञिटुडवः से डु की इत् संज्ञा होकर उसका लोप हो जाता है। अतः प्रकृत सूत्र से भाव अर्थ में उससे क्त्रि प्रत्यय होकर पच्-त्रि रूप बनता है। इस स्थिति में कुत्व होकर पवित्र के रूप बनने पर अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

11. क्त्रेर्मम् नित्यम् **4.4.20**- क्त्रिप्रत्ययान्तान्मप्स्यान्निर्वृत्तेऽर्थे। पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। डुवप् उप्त्रिमम्।

अनुवृत्ति- यहाँ निर्वृत्ते. 4.4.19 से निर्वृत्ते की अनुवृत्ति की गई है। प्रत्यय ग्रहणे तदन्त ग्रहणम् परिभाषा से क्त्र से क्त्रि प्रत्ययान्त का ग्रहण होता है।

सूत्रार्थ- निर्वृत्त (सिद्ध) अर्थ में क्त्रि प्रत्ययान्त से मप् प्रत्यय नित्य ही होता है। यहाँ नित्य ही कहने से स्वतन्त्र क्त्रि प्रत्ययान्त शब्दों में प्रयोग का अभाव दिखाया गया है।

पक्त्रिमम् - (पका हुआ)	उप्त्रिमम्- (बोया हुआ)
पच्-क्त्रि (ड्वित्ःक्त्रि)	वप्-क्त्रि (ड्वितः क्त्रिः)
पच्-क्त्रि (लश., तस्य.)	वप्-क्त्रि (लश., तस्य.)
पच्-त्रि (चोः कुः)	वप्-त्रि (क्त्रेर्मम् नित्यम्)
पक्-त्रि (क्त्रेर्मम् नित्यम्)	वप्-त्रि-मप् (हल., तस्य.)
पक्त्रि-मप् (हल., तस्य.)	वप्-त्रि-म (वचि स्वपियजादीनां किति)
पक्त्रि-म (कृत्तद्धित.)	उप्-त्रि-म (कृत्तद्धित.)
पक्त्रिम-सु (स्वौजस.)	उप्त्रिम-सु (स्वौजस.)
पक्त्रिम सु (स्वमोर्नपुंसकात्)	उप्त्रिम-सु (स्वमोर्नपुंसकात्)
पक्त्रिम-अम् (अतोऽम्)	उप्त्रिम-अम् (अतोऽम्)
पक्त्रिमम् - (अमिपूर्वः)	उपत्रिमम्-(अमिपूर्वः)
पक्त्रिमम्-नुपंसक लिंग प्र. एकवचन।	उप्त्रिमम्-नपुंसक लिंग प्र. एकवचन।

12. ट्वितोऽथुच् **3.3.89**- ट्वितोऽथुच्स्याद्भावे। टुवेपृ कम्पने। वेपथुः।

अनुवृत्ति- धातोः, भावे, अकर्तरि च भाव और कर्ताभिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में ट्वित धातु (जिसका टु इत् संज्ञक है) से अथुच् प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए - वेप् (टुवेप्-काँपना) धातु से प्रकृत सूत्र द्वारा अथुच् प्रत्यय होकर वेपथुः रूप बनता है।

वेपथुः- (कम्पन)

वेप्-अथुच् (ट्वितोऽथुच्)
वेप्-अथुच् (हल. तस्य.)
वेप्-अथु (कृत्तद्धित)
वेपथु-सु (स्वौजस.)
वेपथु-सु (उपदेशे., तस्य.)
वेपथु-स् (ससजुषो रुः)
वेपथु-रु (उपदेशे,, तस्य.)
वेपथु-र् (खरवसानयो.)
वेपथुः- पुल्लिंग प्रथमा एकवचन।

13. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् **3.3.90**- यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः।

सूत्रार्थ- भाव और कर्ता भिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में यज् (यज्ञ, हवन करना), याच् (माँगना), यत् (प्रयत्न करना), विच्छ् (चमकना), प्रच्छ् (पूछना) और रक्ष् (रक्षा करना), इन छः धातुओं से नङ् प्रत्यय होता है। यहाँ भी धातोः, भावे और अकर्तरिच. की अनुवृत्ति की गई है।

यज्ञः- (यज्ञ, हवन)
यज्-नङ् (यजयाचयतविच्छ.)
यज्-नङ् (हल., तस्य.)
यज्-न (स्तोश्चुनाश्चुः)
यज्-ञ (कृत्तद्धित.)
यज्ञ-सु (स्वौजस.)
यज्ञ-सु (उपदेशे., तस्य.)
यज्ञ-स् (ससजुषो रुः)
यज्ञ-रु (उपदेशे., तस्य.)
यज्ञ-र् (खरवसानयो.)
यज्ञः- पुल्लिंग प्रथमा एकवचन।

प्रश्नः- (प्रश्न)
प्रच्छ-नङ् (यजयाचयतविच्छ.)
प्रच्छ्-नङ् (हल., तस्यलोपः)
प्रच्छ्-न (च्छ्वोः शूडनुनासिके च)
प्रश्-न (कृत्तद्धित.)
प्रश्न-सु (स्वौजस.)
प्रश्न-सु (उपदेशे., तस्य.)
प्रश्न-स् (ससजुषो रुः)
प्रश्न-रु. (उपदेशे., तस्य.)
प्रश्न-र् (खरवसानयो.)
प्रश्नः- पुल्लिंग प्रथमा एकवचन।

14. स्वपोनन् **3.3.91**- स्वपनः।

अनुवृत्ति- धातोः, भावे और अकर्तरिच की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- भाव और कर्ताभिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में स्वप् (सोना) धातु से नन् प्रत्यय होता है।

स्वप्नः- (सोना, स्वप्न)
स्वप्-नन् (स्वपोनन्)
स्वप्न-सु (उपदेशे.,तस्य.)
स्वप्न-स् (ससजुषो रुः)

स्वप्-नन् (हल., तस्य.) | स्वपन-रु (उपदेशे., तस्य.)

स्वप्-न (कृत्तद्धित.) | स्वपन-र् (खरवसानयो.)

स्वप्न-सु (स्वौजस.) | स्वप्नः- पुल्लिंग प्रथमा एकवचन्।

15. उपसर्गे घोः किः **3.3.92**- प्रधिः। उपाधिः।

अनुवृत्ति-धातोः, भावे और अकर्तरिच की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ-भाव और कर्ताभिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में, उपसर्ग उपपद रहते घु संज्ञक धातुओं से कि प्रत्यय होता है।

प्रधिः- (नेमि या चक्र की परिधि) | प्रधि- सु (स्वौजस.)

प्र-धा-कि (उपसर्गे घोः किः) | प्रधि-सु (उपदेशे., तस्य.)

प्र-धा-कि (लश., तस्यलोपः) | प्रधि-स् (ससजुषो रुः)

प्र-धा-इ (आतोलोपइटिच) | प्रधि-रु (उपदेशे., तस्य.)

प्र-ध्-इ (कृत्तद्धित.) | प्रधि-र् (खरवसानयो.)

प्रधिः- पु. प्रथमा एकवचन।

16. स्त्रियां क्तिन् 3.3.94- स्त्रीलिंगे भावे क्तिन् स्यात्। घञोऽपवादः कृतिः। स्तुतिः।

अनुवृत्ति- यहाँ स्पष्ट अर्थ के लिए धातोः, भावे और अकर्तरिच की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ-स्त्रीलिंग में भाव और कर्ता भिन्न कारक में, संज्ञा अर्थ में धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है।

उदा. कृतिः- (क्रिया, कार्य, रचना) | स्तुतिः- (पूजा, वन्दना)

कृ-क्तिन् (स्त्रियां क्तिन्) | स्तु-क्तिन् (स्त्रियां क्तिन्)

कृ-क्तिन् (लश., हल., तस्य.) | स्तु-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)

कृ-ति (कृत्तद्धित.) | स्तु-ति (कृत्तद्धित.)

कृति-सु (स्वौजस.) | स्तुति-सु (स्वौजस.)

कृति-सु (उपदेशे. तस्य.) | स्तुति-सु (उपदेशे. तस्य.)

कृति-स् (ससजुषो रुः) | स्तुति-स् (ससजुषो रुः)

कृति-रु (उपदेशे. तस्य.) | स्तुति-रु (उपदेशे., तस्य.)

कृति-र् (खरवसानयो.)

कृतिः- स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

स्तुति-र् (खरवसानयो.)

स्तुतिः- स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

17. वार्तिकः- ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः- तेन नत्वम्। कीर्णिः। गीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः।

वार्तिकार्थ- ऋकारान्त और लू (काटना) आदि धातुओं से क्तिन् प्रत्यय निष्ठा के समान होता है। निष्ठा के समान कहने का प्रयोजन रदाभ्यां निष्ठा तो. से क्तिन् (ति) के तकार के स्थान में नकार करना है।

उदा.-कीर्णिः- (बिखेरना या विक्षेप)

कृ-क्तिन् (स्त्रियां क्तिन्)

कृ-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)

कृ-ति (ऋत् इद् धातो.)

क्-इ-ति (उरण रपरः.)

क्-इ-र्-ति (हलिच)

क्-ई-र्-ति (ऋल्वादिभ्यः, रदाभ्यां.)

क्-ई-र्-नि (रषाभ्यां नो णः)

क्-ई-र-णि (कृत्तद्धित.)

कीर्णि-सु (स्वौजस.)

कीर्णि-सु (उपदेशे., तस्य.)

कीर्णि-स् (ससजुषो रूः)

कीर्णि-रु (उपदेशे. तस्य.)

कीर्णि-र् (खरवसानयो.)

कीर्णिः स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

18. वार्तिक-सम्पदादिभ्यः क्विप्-सम्पत्। विपत्। आपत्।

वार्तिकार्थ- सम्पदादि से क्विप् प्रत्यय होता है। इस प्रत्यय का सर्वापहार लोप हो जाता है।

उदा.- संपत्- (सम्पत्ति)

संपद्-क्विप् (संपदादिभ्यः क्विप्)

संपद्-क्विप् (लश., हल., तस्य.)

संपद्-वि (उपदेशे. तस्य)

संपद्-व् (वेरपृक्तस्य)

संपद्- (खरि च)

संपत्- (कृत्तद्धित.)

संपत्- (स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन)

19. वार्तिक- क्तिन्नपीष्यते-सम्पत्तिः। विपत्तिः। आपत्तिः।

वार्तिकार्थ- संपदादि से क्तिन् प्रत्यय का भी विधान किया जाता है।

उदा.- संपत्तिः- (सम्पत्ति)

संपद्-क्तिन् (संपद, क्तिन्नपी.)

संपद्-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)

संपत्ति-सु (उपदेशे., तस्य.)

संपत्ति-स् (ससजुषो रुः)

संपद्-ति (खरि च)
संपत्ति- (कृत्तद्धित.)
संपत्ति-सु (स्वौजस.)
संपत्ति-रु (उपदेशे., तस्य.)
संपत्ति-र् (खरवसानयो.)
संपत्तिः स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

20. ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च - **3.3.97** एते निपात्यन्ते।

सूत्रार्थ- ऊति, यूति, जूति, साति, हेति और कीर्ति शब्दों का निपातन होता है। ये सभी क्तिन् (ति) प्रत्ययान्त है। अतः क्तिन् प्रत्यय होने पर भी ये निपातित होते हैं। ऊति में उदातत्व, यूति और जूति में दीर्घत्व, साति में इत्वाभाव, हेति में इकारादेश और कीर्ति में क्तिन् प्रत्यय का निपातन होता है।

उदा.- ऊति (रक्षा)- अव (रक्षणे) धातु से क्तिन् (ति) प्रत्यय होकर ऊति बनता है।

अव-क्तिन् (स्त्रियां क्तिन्)
अव-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)
अव-ति (ज्वर, त्वर.)
ऊठ्-ति (हल., तस्य.)
ऊति- (कृत्तद्धित.)
ऊति-स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

यूति-(मिलन या मिश्रण)
यु-क्तिन् (स्त्रियां क्तिन्)
यु-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)
यु-ति (ऊति यूति.)
यूति- (कृत्तद्धित.)
यूति-स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

जूति- (वेग)
जु-क्तिन् (स्त्रियाँ क्तिन्)
जु-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)
जु-ति (ऊति. यूति.)
जूति- (कृत्तद्धित.)
जूति- स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

साति- सो (नष्ट करना) धातु से क्तिन् प्रत्यय हो साति रूप बनता है।
सो-क्तिन् (स्त्रियां क्तिन्)
सो-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)
सो-ति (आदेच उपदेशेऽशिति)
सा-ति (द्यतिस्यति)
स्-इ-ति (ऊतियूति.)
साति- (कृत्तद्धित.)
साति-स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

हेति- (मारना या हथियार)
हन्-क्तिन् (स्त्रियाँ क्तिन्)
हन्-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)

कीर्ति- कृ (बिखेरना, यश)
कृ-क्तिन् (स्त्रियाँ क्तिन्, ऊति यूति.)
कृ-क्तिन् (लश., हल., तस्य.)

हन्-ति (ऊति यूति.)

ह-इ-ति (आद्गुणः)

हेति- (कृत्तद्धित.)

हेति- स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

कृ-ति (ऋत् इत् धातोः.)

क्-इ-ति (उरण रपरः)

क्-इ-र्-ति (हलि च)

कीर्ति- (कृत्तद्धित.)

कीर्ति- स्त्री प्र. विभक्ति एकवचन।

21. ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च- 6.4.20 एषामुपधावकारयोरूठ् स्यादनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति। अतः क्विप्। जूः। तूः। सूः। ऊः। मूः।

सूत्रार्थ- क्वि (क्विपादि) तथा अनुनासिक और झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते ज्वर (बीमार होना), त्वर (जल्दी करना), स्रिव (जाना, सूखना), अव् (रक्षण) और मव् (बाँधना) इन पाँच धातुओं के वकार तथा उपधा दोनों के स्थान पर ऊठ् (ऊ) आदेश होता है।

उदा. - जूः (रोग, चाल, पर्यावरण, राक्षस)

ज्वर्-क्विप् (क्विप् च)

ज्वर्-क्विप् (लश., हल., तस्य.)

ज्वर्-वि (उपदेशे., तस्य.)

ज्वर्-व् (वेरपृक्तस्य.)

ज्वर्- (ज्वरत्वर.)

ज्-ऊठ्-र् (हल., तस्य. लोपः.)

ज्-ऊ-र् (कृत्तद्धित.)

जूर्-सु (स्वौजस.)

जूर्-सु (उपदेशे., तस्य.)

जूर्-स् (ससजुषो रुः.)

जूर्-रु (उपदेशे., तस्य.)

जूर्-र् (हलङ्याब्भ्यो दीर्घात्.)

जूर्-(खरवसानयो.)

जूः- पु. प्रथमा एकवचन।

22. इच्छा- 3.3.101 इषेर्निपातोऽयम्।

सूत्रार्थ- इष् (इच्छा करना) धातु से श प्रत्यय और यगभाव का निपातन होता है।

उदा.-इच्छा

इष् - श (इच्छा)

इष्-श (लश. तस्य.)

इष्-अ (इषुगमियमां छः)

इछ्-अ (छे च)

इ-तुक्-छ्-अ (हल., उपदेशे., तस्य.)

इ-त्-छ्-अ (स्तोः श्चुना श्चुः)

इच्-छ्-अ (कृत्तद्धित.)

इच्छ- (स्त्रियाम्, अजाद्यतस्टाप्)

इच्छ- टाप् (चुटू., हल. तस्यलोपः)

इच्छ-आ (अकः सवर्णेदीर्घः)

इच्छा-स्त्री प्र. विभक्ति एकवचन।

23. अ प्रत्ययात्- 3.3. 102 प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या।

अनुवृत्ति- यहाँ स्त्रियांक्तिन्, धातोः, भावे, अकर्तरिच. कारके संज्ञायाम् की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- स्त्रीलिंग में भाव और संज्ञा अर्थ में कर्तभिन्न कारक में प्रत्ययान्त धातु से "अ" प्रत्यय होता है। यह स्त्रियां क्तिन् से प्राप्त क्तिन् प्रत्यय का अपवाद है।

उदा. -चिकीर्षा- (करने की इर्च)

कृ-सन् (धातोः कर्मणः)

कृ-सन् (हल. तस्य.)

कृ-स (अच्छनगमां.)

कृ-स (ऋत् इद्धातोः)

क्-इ्-स (उरण रपरः.)

कृ-इ्-र्-स (सन्यडोः)

क्-इ-र्-क्-इ-र्-स (हलादिः)

क्-इ-क्-इ-र्-स (कुहोश्चुः)

च्-इ-क्-इ-र्-स (हलि च)

च्-इ-क्-ई-र्-स (आदेश प्रत्ययोः)

च्-इ-क्-ई-र्-ष (सनाद्यन्ताधातव, अप्रत्ययात्)

चिकीर्ष्- अ (आतो लोपः,कृत्तद्धित.)

चिकीर्ष्- अ (अजातस्टाप्)

चिकीर्ष्- अ-टाप् (चुटू., हल., तस्य.)

चिकीर्ष्- अ-आ (अकः सवर्णे दीर्घः.)

चिकीर्षा- स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचक्क

24. गुरोश्च हलः- 3.3.103 गुरूमतो हलन्तात्स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। ईहा

अनुवृत्ति- स्त्रियांक्तिन्, धातोः, भावे, अकर्तरि की अनुवृत्ति की गई है। यहाँ सूत्रस्थ गुरोः और हलः धातोः के विशेषण हैं। अ प्रत्यय की अनुवृत्ति अप्रत्ययात् सूत्र से की गई है।

सूत्रार्थ- स्त्रीलिंग में भाव और संज्ञा अर्थ में कर्ता भिन्न कारक में गुरुमान (जिसमें कोई गुरु वर्ण हो) और हलन्त धातु से "अ" प्रत्यय होता है। यह भी स्त्रियांक्तिन् का अपवाद है।

उदा.- इहा- (चेष्टा)

ईह्-अ (अ प्रत्ययात्)

ईह्- अ (कृत्तद्धित.)

ईह- टाप् (अजाद्यतष्टाप्)

ईह-टाप् (चुटू., हल., तस्य.)

ईह-आ (अकः सवर्णेदीर्घः)

ईहा-स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

25. ण्यासश्रन्थो युच्- 3.3.107 अकारस्यापवादः। कारण। हारणा।

सूत्रार्थ- ण्यन्त धातु, आस् धातु और श्रन्थ् (छोड़ना, लिखना) इन धातुओं से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय होता है।

उदा. - कारणा- (यातना या तीव्र पीड़ा)

कृ-णि-युच् (ण्यासश्रन्थो युच्)

कृ-णि-युच् (चुटू., तस्य.)

कृ-इ-युच् (अचोञ्णिति)

कार्-इ-युच् (हल., तस्य.)

कारि-यु (युवोरनाको.)

कारि-अन (णेरनिटि)

कार्-अन (रषाभ्यां नो णः समानपदे)

कार्-अण (कृत्तद्धित.)

कारण-टाप् (अजाद्यतटाप्)

कारण-टाप् (चुटू., हल, तस्य.)

कारण-आ (अकः सवर्णे दीर्घः)

कारणा-स्त्री. प्र. विभक्ति एकवचन।

26. नपुंसके भावे क्तः **3.3.114**

सूत्रार्थ- नपुंसक लिंग में भाव अर्थ में धातु से क्त प्रत्यय होता है।

उदा.- हसितम् - (हँसना)

हस्-क्त (धातोः, नपुंसके भावे क्तः)

हस-क्त (लश., तस्य.)

हस्-त (आर्धधातुकस्येड्वलादेः)

हस्-इट्-त (हल., तस्यलोपः)

हस्-इ-त (कृत्तद्धित.)

हसित-सु (स्वौजस.)

हसित-सु (स्वमोर्नपुंसकात्.)

हसित-अम् (अतोऽम्)

हसित-अम् (अमिपूर्वः)

हसितम्- नपुं.प्र. विभक्ति एकवचन।

27. ल्युट् च **3.3.115**

अनुवृत्ति-नपुंसके, भावे, धातोः।

सूत्रार्थ- नपुंसक लिंग में भाव अर्थ में धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है।

उदा.-हसनम् - (हँसना)

हस्-ल्युट् (धातो, भावे, ल्युट् च)

हस्-ल्युट् (हल., लश., तस्य.)

हस्-यु (युवोरनाकौ)

हस्-अन (कृत्तद्धित.)

हसन-सु (स्वौजस.)

हसन-सु (स्वमोर्नपुंसकात्.)

हसन-अम् (अतोऽम्)

हसनम्-(अमिपूर्वः)

हसनम्- नपुं. प्र. विभक्ति एकवचन।

28 पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण **-3.3.118**

अनुवृत्ति- यहाँ धातो- तथा करणाधिकरणयोः की अनुवृत्ति की गई है।

सूत्रार्थ- करण और अधिकरण कारक में धातु में पुल्लिंग संज्ञा अर्थ में घ प्रत्यय होता है।

उदा.-आकरः - (खान या खनि)

आ-कृ-घ (धातोः करणाधि., पुंसि.)	आकर-सु (उप., तस्य.)
आ-कृ-घ (लश., तस्य.)	आकर-स् (ससजुषो रुः)
आ-कृ-अ (सार्वधातु.)	आकर-रु (उपदेशे., तस्य.)
आकर-अ (कृत्तद्धित.)	आकर-र् (खरवसानयो.)
आकर-सु (स्वौजस.)	आकरः पु.प्र. विभक्ति एकवचन।

29. छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य - **7.4.97** द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे। दंताश्छाद्यन्तेऽनेन दन्तच्छदः।

सूत्रार्थ - यदि पूर्व में दो उपसर्ग न हों तो घ प्रत्यय परे होने पर अंगावयव छाद की उपधा को ह्रस्वादेश होता है।

उदा. दन्तच्छदः (ओष्ठ)

दन्त-छाद्-घ (पुंसि संज्ञायां.)	दन्त-च्-छद्-अ (कृत्तद्धित.)
दन्त-छाद्-घ (लश., तस्य.)	दन्तच्छद-सु (स्वौजस.)
दन्त-छाद्-अ (खचिह्रस्व, छादेर्घे.)	दन्तच्छद-सु (उपदेशे. तस्य.)
दन्त-छाद्-अ (छे च)	दन्तच्छद-स् (ससजुषो.)
दन्त-तुक्-छद्-अ (उपदेशे., हल., तस्य.)	दन्तच्छद-रु (उपदेशे., तस्य.)
दन्त-त्-छद्-अ (झलां जशोऽन्ते)	दन्तच्छद-र् (खरवसानयो.)
दन्त-द्-छद्-अ (स्तोः श्चुना श्चुः)	दन्तच्छदः - पु.प्र. विभक्ति एकवचन।
दन्त-ज्-छद्-अ (खरि च)	

30. अवे तृस्त्रोर्घञ् - **3.3.120** अवतारः कूपादेः । अवस्तारो जवनिका ।

सूत्रार्थ - करण और अधिकरण कारक में अव उपपद रहते तृ और स्तृ इन दोनों धातुओं से पुल्लिंग संज्ञा अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। तृ (तैरना या पार करना) - यह भ्वादिगण की धातु है और स्तृ (ढँकना) - यह क्रयादिगण की धातु है।

उदा. अवतारः - (उतरना, उतार, सोपान)

अव-तृ-घञ् (करणा., पुंसि., अवेतृ)	अवतार-सु (उपदेशे., तस्य.)
अव-तृ-घञ् (लश., हल., तस्य.,)	अवतार-स् (ससजुषो.)
अव-तृ-अ (सार्वधातु.)	अवतार-रु (उपदेशे., तस्य.)

अव-तर्-अ (अत उपधायाः)
अव-तार्-अ (कृत्तद्धित.)
अवतार-सु (स्वौजस)
अवतार-र् (खरवसानयो.)
अवतारः-पु.प्र. विभक्ति एकवचन।

31. हलश्च - **3.3.121** हलन्ताद् घञ् । घापवादः। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः।

अनुवृत्ति - यहाँ स्पष्टीकरण के लिए अधिकार सूत्र धातोः, करणाधि., पुंसि संज्ञायाम्. से संज्ञा और पुंसि संज्ञा तथा अवेतृ. से घञ् की अनुवृत्ति की गई है। सूत्रस्थ हल धातोः का विशेषण है अतः उसमें तदन्त विधि हो जाती है।

सूत्रार्थ - करण और अधिकरण कारक में हलन्त धातु में पुल्लिंग संज्ञा अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। उदाहरण के लिए रमन्ते योगिनोऽस्मिन् (इसमें योगी रमते हैं) इस विग्रह में अधिकरण कारक में हलन्त धातु रम् से पुल्लिंग संज्ञा अर्थ में घञ् प्रत्यय होकर राम प्रातिपदिक बनता है तथा पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में रामः रूप सिद्ध होता है।

रामः - (राम)
रम्-घञ्- (अवेतृ., हलश्च)
रम्-घञ् (हल., तस्य.)
रम्-घ (लश., तस्य.)
रम्-अ (अत उपधायाः)
राम्-अ (कृत्तद्धित.)
राम-सु (स्वौजस)
राम-सु (उपदेशे., तस्य.)
राम-स् (ससजुषो रुः)
राम-रु (उपदेशे., तस्य.)
राम-र् (खरवसानयो.)
रामः - पु.प्र. एकवचन।

अपामार्ग : - (औषधि, चिरचिटा)
अप-मृज्-घञ् (अवेतृ. हलश्च)
अप-मृज्-घञ् (हल., तस्य.)
अप-मृज्-घ (लश., तस्य.)
अप-मृज्-अ (मृजेवृद्धिः)
अप-मार्ज (चजोः कु घिण्यतोः)
अपमार्ग - (उपसर्गस्य घञ्.)
अपामार्ग - (कृत्तद्धित.)
अपामार्ग-सु (स्वौजस.)
अपामार्ग-सु (उपदेशे., तस्य.)
अपामार्ग-स् (ससजुषो., उपदेशे., तस्य.)
अपामार्ग-र् (खरवसानयो.)
अपामार्गः - पु.प्र. एकवचन।

32. ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् - **3.3.126** करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थे - षूपपदेषु खल्। तयोरेवेति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रे - दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रे - ईषत्करः। सुकरः।

सूत्रार्थ - ईषत्, दुस् और सु उपपद रहने पर कृच्छ (दुःख) और अकृच्छ (सुख) अर्थ में धातु से खल् प्रत्यय होता है। योग्यता बल से दुःख दुस् का विशेषण है और ईषत् तथा सु सुख का। तात्पर्य यह है कि दुःख अर्थ में दुस् और सुख अर्थ में ईषत् तथा सु उपपद रहते धातु से खल प्रत्यय का विधान है। तयोरेव. सूत्र से खल् प्रत्यय भाव और कर्म में ही होता है।

उदा. दुष्करः (कठिन)

दुस्-कृ-खल् (ईषद्दुः सुषु.)

दुस्-कृ-खल् (हल. लश. तस्यलोपः.)

दुस्-कृ-अ (सार्वधातु का.)

दुस्-कर्-अ (उरणरपरः)

दुस्-क्-अ-र्-अ (ससजुषो.)

दु-रु-कर (उपदेशे., तस्य.)

दु-र्-कर (खरवसानयो.)

दुः-कर (इदुदुपधस्य.)

दुष्कर - (कृत्तद्धित.)

दुष्कर-सु (स्वौजस.)

दुष्कर-स् (ससजुषो.)

दुष्कर-रु (उपदेशे., तस्य.,)

दुष्कर-र् (खरवसानयो.)

दुष्करः -पु.प्र. एकवचन।

33. आतो युच् - **3.3.128** खलोऽपवादः। ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः।

सूत्रार्थ - दुःख अर्थ में दुस् तथा सुख अर्थ में ईषत् और सु उपपद रहने पर आकारांत धातु से युच् प्रत्यय होता है। यह खल् प्रत्यय का अपवाद है।

उदा. ईषत्पानः (सरलता से पेय)

ईषत्-पा-युच् (आतोयुच्)

ईषत्-पा-युच् (हल., तस्य.)

ईषत्-पा-यु (युवोनाकौ)

ईषत्-पा-अन (अकः सवर्णेदीर्घः)

ईषत्पान- (कृत्तद्धित.)

ईषत्पान-सु (स्वौजस.)

ईषत्पादन-सु (उपदेशे. तस्य.)

ईषत्पान-स् (ससजुषो रुः)

ईषत्पान-रु (उपदेशे., तस्य.)

ईषत्पान-र् (खनवसानयो.)

ईषत्पानः- पु.प्र.एकवचन।

नोट : इसी प्रकार दुष्पानः= दुःख से पेय तथा सुपानः = सुख से पेय रूप भी सिद्ध होते हैं।

34. अलङ्.खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचांक्त्वा -**3.4.18** प्रतिषेधार्थयोरलङ्. खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्। प्राचां ग्रहणं प्रजार्थम् । अमैवाव्ययेनेति नियमान्नोपपदसमासः । दो दद्घोः। अलंदत्वा। घुमास्येतीत्वम् । पीत्वा खलु।

सूत्रार्थ - प्रतिषेध (निषेध) वाचक अलं और खलु के उपपद रहते धातु से विकल्प से क्त्वा प्रत्यय होता है। उदाहरण के लिए अलं दत्त्वा (मत दो), पीत्वा खलु (मत पियो)।

नोट - क्त्वा के अभाव में अलं और खलु के योग में तृतीया का विधान है। अलं दानेन। पानेन खलु।

अलं दत्त्वा - (मत दो)

अलं-दा-क्त्वा (अलं खल्वोः.)

अलं-दा-क्त्वा (लश., तस्यलोपः)

अलं-दा-त्वा (दो दद्घोः)

अलं-दद्-त्वा (खरि च)

अलं-दत्-त्वा (कृत्तद्धित.)

अलं दत्त्वा-सु (स्वौजस.)

अलं दत्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

अलं दत्त्वा।

35. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले - **3.4.21** समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोःक्त्वा स्यात्। भुक्त्वा व्रजति। द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति।

सूत्रार्थ - समानकर्ता वाली अर्थात् जिनका कर्ता एक ही हो ऐसी धातुओं से पूर्वकाल और वर्तमान धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए - देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति (देवदत्त खाकर जाता है), पीत्वा व्रजति (पीकर जाता है), स्नात्वा भुङ्.क्ते (स्नान करके खाता है)। प्रथम उदाहरण में जाने की क्रिया (व्रजति) और खाने की क्रिया (भुक्त्वा) का कर्ता देवदत्त ही है। अतः भुज् एवं व्रज् समानकर्तृक धातुएँ हैं एवं पहले खाता है, पीछे जाता है। अतः भुज् धातु पूर्वकालिक है सो इससे क्त्वा प्रत्यय हो गया। इसी प्रकार सभी उदाहरण में समझें।

भुक्त्वा (व्रजति)

भुज्-क्त्वा (समानकर्तृकयोः., अलखल्वोः., प्रतिषेध.)

भुज्-क्त्वा (लश., तस्यलोपः)

भुज्-त्वा (चोः कुः)

भुग्-त्वा (खरि च)

भुक्-त्वा (कृत्तद्धित.)

भुक्त्वा-सु (स्वौजस.)

पीत्वा (व्रजति)

पा-क्त्वा (समानकर्तृ., पूर्वकाले)

पा.क्त्वा (लश., तस्य.)

पा-क्त्वा (घुमास्थागापा.)

पी-त्वा (कृत्तद्धित.)

पीत्वा-(स्वौजस.)

पीत्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

भुक्त्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः) पीत्वा।

भुक्त्वा।

37. न क्त्वा सेट् - 1.2.18 सेट् क्त्वा किन्न स्यात्। शयित्वा। सेट् किम्? कृत्वा।

सूत्रार्थ - सेट् (इट् सहित) क्त्वा प्रत्यय कित् नहीं होता है। कित् का निषेध करने से 7.3.87 से गुण हो जाता है। अन्यथा ग्क्ङ.ति च से निषेध हो जाता है। दिव्-इट्-त्वा= प्रतिषेध.) देत्वा (क्रीड़ा करके), वृत-इट्-त्वा-वर्त्तित्वा (बरत कर) वृध्-इट-त्वावर्धित्वा (बढ़कर) रूप बनेंगे।

टिप्पणी - जिन धातुओं से परे क्त्वा प्रत्यय को इट् का आगम हो जाता है, क्त्वा सेट अर्थात् इट् सहित है। क्त्वा में क् इत् है अतः यह कित् है किन्तु ऊपर के सूत्र के अनुसार सेट्क्त्वा कित् नहीं अर्थात् उसके परे होने पर गुण वृद्धि निषेध आदि (कित् के) के कार्य नहीं होंगे।

उदा. शयित्वा - (सोकर)

शी-क्त्वा (समानकर्तृकयोः.) श्-ए-इत्वा (एचोऽयवायावः)

शी-क्त्वा (लश., तस्यलोपः) श्-अय्-इत्वा (कृत्तद्धित.)

शी-त्वा (सार्वधा.) शयित्वा - (क्त्वातोसुन्कसुन्)

शी-इट्-त्वा (हल., तस्य.) शयित्वा-सु (स्वौजस.)

शी-इ-त्वा (क्त्वासेट) शयित्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

शी-इ-त्वा (सार्वधातु.) शयित्वा।

38. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च - **1.2.26** इवर्णोवर्णोपधाद्धलादे रलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा-द्योतित्वा। लिखित्वा-लेखित्वा। व्युपधात्किम्? वर्तित्वा। रलः किम्? सेवित्वा। हलादेः किम्? एषित्वा। सेट् किम्? भुक्त्वा।

सूत्रार्थ - उकार इकार उपधा वाली (व्युपधात्) रलंत एवं हलादि धातुओं से परे सेट् सन् और सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प से कित् नहीं होते।

उदाहरण के लिए - द्युतित्वा (प्रकाशित होकर) द्योतित्वा। लिखित्वा (लिखकर) लेखित्वा। दिद्युतिषते (प्रकाशित होना चाहता है) दिद्योतिषते। लिलिखिषति (लिखना चाहता है) लिलेखिषति। द्युत् दीप्तौ (भ्वा., आत्म.) तथा 'लिख् अक्षरविन्यासे' (तुदा.पर.) ये धातुएँ उकार इकार उपधावाली रलंत तथा हलादि भी हैं। अतः इनसे परे सेट् सन् और सेट् कत्वा को कित्त्व विकल्प से हो गया है। कित् पक्ष में गुण निषेध, एवम् अकित् पक्ष में पूर्ववत गुण भी हो जायेगा।

द्युतित्वा - (प्रकाशित होकर)	द्योतित्वा - (चमकाकर या प्रकाशित करके)
द्युत-क्त्वा (समानकर्तृकयोः.)	द्युत्-क्त्वा (समानकर्तृकयोः.)
द्युत्-क्त्वा (लश., तस्यलोपः)	द्युत्-क्त्वा (लश., तस्य.)
द्युत्-त्वा (आर्धधातुकस्येड्वलादेः)	द्युत्-क्त्वा (आर्धधातु.)
द्युत्-इट्-त्वा (हल., तस्य.)	द्युत्-इट्-त्वा (हल., तस्य.)
द्युत्-इ-त्वा (न क्त्वा सेट्, रलोव्युप.)	द्युत्-इ-त्वा (न क्त्वा सेट्, रलोव्युप.)
द्युत-इ-त्वा (पुगन्त., ग्क्डि.ति च.)	द्युत्-इ-त्वा (पुगन्त.)
द्युत्-इ-त्वा (कृत्तद्धित)	द्योत्-इ-त्वा (कृत्तद्धित.)
द्युतित्वा- (क्त्वातोसुन्कसुन्)	द्योतित्वा- (क्त्वातोसुन्कसुन्)
द्युतित्वा-सु (स्वौजस.)	द्योतित्वा-सु (स्वौजस.)
द्युतित्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)	द्योतित्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)
द्युतित्वा।	द्योतित्वा।

39. उदितो वा -**7.2.56** उदितः परस्य क्त्व इड् वा स्यात्। शमित्वा-शांत्वा। देवित्वा द्यूत्वा। दधातेर्हिः, हित्वा।

सूत्रार्थ - (उदितः) उकार इत्संज्ञक है, जिनका ऐसे धातुओं से परे क्त्वा को विकल्प से इट् का आगम होता है। अनिट् पक्ष में शांत्वा आदि में अनुनासिकस्य. (7.4.15) से दीर्घ होता है। इसी प्रकार शमु से शमित्वा, शान्त्वा तथा तमु धातु से तमित्वा, तान्त्वा और दमु धातु से दमित्वा, दांत्वा रूप सिद्ध होते हैं।

उदाहरण के लिए - शमित्वा (शान्त्वा)- यहाँ शम् (शमु-शांत करना) धातु से पूर्वकालिक अर्थ में समानकर्तृकयोः. द्वारा क्त्वा (त्वा) प्रत्यय होकर शम्-त्वा रूप बनने पर उदितोवा से क्त्वा (त्वा) को विकल्प से इट् (इ) आगम हो शम्-इ-त्वा = शमित्वा रूप बनता है। इट् के अभाव में पक्ष में शम्-त्वा स्थिति होने पर अनुनासिकस्य. द्वारा शम् की उपधा शकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ आकार होकर शांत्वा रूप सिद्ध होता है।

शमित्वा - (शांत करके)	शांत्वा - (शांत करके)
शम्-क्त्वा- (समानकर्तृकयोः.)	शम्-क्त्वा (समानकर्तृ.)
शम्-क्त्वा (लश., तस्यलोपः)	शम्-क्त्वा (लश., तस्यलोपः)
शम्-त्वा (उदितो वा)	शम्-त्वा (अनुनासिकस्य.)
शम्-इट्-त्वा (हल., तस्य.)	शाम्-त्वा (नश्चापदान्तस्य.)

शम्-इ-त्वा (कृत्तद्धित.)

शमित्वा-(क्त्वातोसुन्कसुन्)

शमित्वा-सु (स्वौजस.)

शमित्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

शमित्वा।

शां-त्वा (अनुस्वारस्य.)

शा-न्-त्वा (कृत्तद्धित.)

शांत्वा- (क्त्वातोसुन्कसुन्)

शांत्वा- सु (स्वौजस.)

शांत्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

शान्त्वा

हित्वा- (धारण करके)

धा-क्त्वा (समानकर्तृ.)

धा-क्त्वा (लश., तस्यलोपः)

धा-त्वा (दधातेर्हिः)

हित्वा- (कृत्तद्धित.)

हित्वा- (क्त्वातोसुन्कसुन्)

हित्वा-सु (स्वौजस.)

हित्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

हित्वा।

हित्वा (त्यागकर)

ओहाक्-क्तवा (समानकर्तृकयोः)

ओहाक्-क्त्वा (लश., तस्यलोपः)

ओहाक्-त्वा (जहातेश्च.)

हि-त्वा (कृत्तद्धित.)

हित्वा-(क्त्वातोसुन्कसुन्)

हित्वा-सु (स्वौजस.)

हित्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

हित्वा।

देवित्वा- (क्रीड़ा करके)

दिव्-क्त्वा (समानकर्तृकयोः.)

दिव्-क्त्वा (लश., तस्यलोपः)

दिव्-त्वा (उदितो वा)

दिव्-इट्-त्वा (हल., तस्यलोपः)

दिव्-इ-त्वा (ग्किङ.तिच, न क्त्वा सेट)

दिव्-इ-त्वा (पुगन्तलघूपधस्य च)

द्-ए-व्-इ-त्वा (कृत्तद्धित.)

देवित्वा- (क्त्वातोसुन्कसुन्)

देवित्वा-सु (स्वौजस.)

देवित्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

देवित्वा।

द्यूत्वा (खेलकर)

दिव्-क्त्वा (समानकर्तृकयोः.)

दिव्-क्त्वा (लश.,तस्यलोपः)

दिव्-त्वा (च्छवो.)

दि-ऊ-त्वा (इकोयणचि.)

द्-यू-त्वा (कृत्तद्धित.)

द्यूत्वा-(क्त्वातोसुन्कसुन्)

द्यूत्वा-सु (स्वौजस.)

द्यूत्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)

द्यूत्वा।

40. जहातेश्च क्त्वि - **7.4.43** हित्वा। हाङ्स्तु-हात्वा।

सूत्रार्थ - ओहाक् (त्यागे)(जहाति) धातु को भी हि आदेश होता है। क्त्वा प्रत्यय परे होने पर। अनेकाल. परिभाषा से यह आदेश संपूर्ण ओहाक् के स्थान पर होता है। ओहाङ्. (गतौ)हाङ्. का हात्वा रूप बनता है।

उदाहरण के लिए - हात्वा (जाकर) यहाँ ओहाङ्. (जाना) धातु से पूर्वकालिक अर्थ में समानकर्तृ. सूत्र द्वारा क्त्वा प्रत्यय होकर हात्वा रूप बनता है। यहाँ धातु को हि आदेश नहीं होता। इसीलिये सूत्र में जहाति कहा गया है, जो ओहाक् (त्यागे) का रूप है। ओहाङ्. गतौ का जिहीते रूप होता है।

हात्वा-(जाकर)

हाङ्.-क्त्वा (समानकर्तृ.)	हात्वा- (कत्वातोसुन्कसुन्)
हाङ्.-क्त्वा (लश. तस्यलोपः)	हात्वा-सु (स्वौजस.)
हाङ्.-त्वा (हल., तस्यलोपः)	हात्वा-सु (अव्ययादाप्सुपः)
हा-त्वा (कृत्तद्धित.)	हात्वा।

41. समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् - **7.1.37** अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वोल्यबादेशःस्यात्। तुक्। प्रकृत्य। अनञ्, किम्? अकृत्वा।

सूत्रार्थ - यदि नञ् अव्यय पूर्व पद न हो तो समास में क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश होता है। अनेकाल् शित्सर्वस्य परिभाषा से यह आदेश संपूर्ण क्त्वा के स्थान पर होता है। इस सूत्र के प्रवृत्त होने के लिए दो बातें आवश्यक हैं।

(क) समास होना चाहिये - उदाहरण के लिए समास न होने के कारण कृ धातु से क्त्वा प्रत्यय होकर कृत्वा रूप बनने पर (क्त्वा) त्वा के स्थान पर ल्यप् नहीं होता।

(ख) समास होने पर भी नञ् उपपद नहीं होना चाहिये -उदाहरण के लिए नञ् उपपद पूर्वक कृ धातु से क्त्वा प्रत्यय हो अकृत्वा रूप बनेगा। यहाँ तत्पुरुष समास होने पर भी नञ् उपपद होने के कारण क्त्वा को ल्यप् न होकर अकृत्वा रूप सिद्ध होता है।

किन्तु प्रकृत्य शब्द में सूत्र के दोनों नियम घटित होते हैं। यहाँ प्र उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्त्वा प्रत्यय हो प्रकृत्य रूप बनता है। इस स्थिति में कुगति प्रादयः से समास होता है। यहाँ उपपद में नञ् भी नहीं है। अतः वर्तमान सूत्र द्वारा क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश होकर प्र-कृ य रूप बनेगा। तब तुक् आगम होकर प्रकृत्य रूप सिद्ध होता है।

उदा. प्रकृत्य - (प्रारंभ कर)

प्र-कृ-क्त्वा (समानकर्तृः.)	प्र-कृ-तुक् (हल., उपदेशे., तस्य.)
प्र-कृ-त्वा (लश., तस्य.)	प्र-कृ-त्-य (कृत्तद्धित.)
प्र-कृ-त्वा (कुगतिप्रादयः)	प्रकृत्य-(क्त्वातो.)
प्र-कृ-त्वा (समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्)	प्रकृत्य-सु (स्वौजस.)
प्र-कृ-ल्यप् (हल., लश., तस्यलोपः)	प्रकृत्य-सु (अव्ययादाप्सुपः)
प्र-कृ-य (ह्रस्वस्य पितिकृति.)	प्रकृत्य।

42. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च - **3.4.22** आभीक्ष्ण्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च।

सूत्रार्थ - पुनः-पुनः या बार-बार (आभीक्ष्ण्यं पौनः पुन्यम्) अर्थ में समानकर्तृक पूर्वकालिक धातु से णमुल् प्रत्यय होता है और विकल्प से क्त्वा प्रत्यय भी। णमुल् का अम् अंश शेष रह जाता है। अन्य सभी वर्ण इत्संज्ञक हैं।

उदाहरण के लिए - स्मरण क्रिया का बार-बार होना बताने के अर्थ में स्मृ धातु से णमुल् प्रत्यय होकर स्मृ-अम् रूप बनता है। इस स्थिति में स्मृ के ऋकार को वृद्धि हो स्म-आर्-अम् = स्मारम् रूप बनने पर अग्रिम सूत्र लागू होता है।

43. नित्यवीप्सयो : **8.1.4**. आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये वीप्सायां च पदस्य द्वित्वं स्यात्। आभीक्ष्ण्यं तिङ.न्तेष्वव्ययसंज्ञककृदंतेषु च। स्मारं-स्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वाःस्मृत्वा। पायं-पायम्। भोजं-भोजम्। श्रावं-श्रावम्।

सूत्रार्थ - पौनः पुन्य और वीप्सा अर्थ के द्योतित होने पर पद का द्वित्व होता है।

उदाहरण के लिए - स्मारम् का प्रयोग पौनः पुन्य अर्थ में हुआ है। अतः प्रकृत सूत्र से उसका द्वित्व होकर स्मारं स्मारम् रूप बनता है। स्मारं स्मारम् नमति शिवम् (याद कर करके शिव को प्रणाम करता है) णमुल् के अभाव में क्त्वा होकर स्मृत्वा स्मृत्वा नमतिं शिवम् रूप बनता है। वीप्सा का उदाहरण ग्रामो ग्रामो रमणीयः (गाँव-गाँव सुंदर है) में मिलता है, क्योंकि यहाँ सुबन्त ग्रामः का द्वित्व हुआ है।

स्मारं स्मारम् - (स्मरण कर करके)	पायं पायम् (पी पी कर)
स्मृ-णमुल् (आभीक्ष्ण्ये. णमुल च)	पा-णमुल् (आभीक्ष्ण्ये.)
स्मृ-णमुल् (हल., चुटू., उपदेशे., तस्य)	पा-णमुल् (हल., चुटू., उपदेशे., तस्य.)
स्मृ-अम् (अचो ञ्णिति, उरण रपरः)	पा-अम् (आतो युक्.0)
स्म्-आर्-अम् (नित्यवीप्स्योः)	पा-युक्-अम् (हल., उपदेशे., तस्य.)
स्मारम्-स्मारम् (नश्चापदान्तस्य)	पा-य्-अम् (नित्य वीप्सयोः)
स्मारं-स्मारम् (कृत्तद्धित.)	पायम्-पायम् (नश्चापदांतस्य.)

स्मारं-स्मारम्-सु (स्वौजस.)	पायं-पायम् (कृत्तद्धित.)
स्मारं स्मारम्-सु (उपदेशे., तस्य.)	पायं पायम्-सु (स्वौजस.)
स्मारं स्मारम्-स् (कृन्मेजन्तः)	पायं पायम्-सु (उपदेशे., तस्य.)
स्मारं स्मारम्-स् (अव्ययात.)	पायं पायम्-स् (कृन्मेजंतः)
स्मारं स्मारम्।	पायं पायम्-स् (अव्ययात्.)
	पायं पायम्

44. अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् - 3.4.27 एषु कृञो णमुल् स्यात्सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवं भूतश्चेत कृञ्। व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। अन्यथाकारम्। एवंकारम्। कथंकारम्। इत्थंकारं भुङ्.क्ते।

अर्थ - अन्यथा, एवम्, कथम् और इत्थम् इन चार अव्ययों के उपपद रहने पर कृञ् (करना) धातु से णमुल् प्रत्यय होता है। यदि कृञ् का अप्रयोग सिद्ध हो तो। तात्पर्य यह है कि यदि कृञ् धातु का प्रयोग करने की आवश्यकता न हो और उसके प्रयोग के बिना भी अभीष्ट अर्थ की प्रतीति हो जाय तो पूर्वोक्त चार अवयवों में से किसी के भी उपपद रहने पर कृञ् धातु से णमुल् (अम्) प्रत्यय होता है।

उदाहरण के लिए - अन्यथा पूर्वक कृ धातु से णमुल् प्रत्यय होकर अन्यथाकारम् बनता है। यहाँ कृ धातु का प्रयोग व्यर्थ है क्योंकि अन्यथा से जो अर्थ प्राप्त होता है वही अन्यथाकारम् से भी यहाँ कृ के प्रयोग से अर्थ में कोई विशेषता नहीं आती, किन्तु यदि कृ का प्रयोग व्यर्थ न होकर सार्थक होगा तो अन्यथा आदि उपपद कृ (कृञ्) से णमुल् प्रत्यय नहीं होगा।

उदाहरण के लिए - शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्.क्ते (शिर को अन्यथा करके खाता है) इस वाक्य में कृ का प्रयोग व्यर्थ नहीं है। अपितु आवश्यक है। अतः अन्यथा उपपद रहने पर भी यहाँ कृ से णमुल् नहीं हुआ। तब क्त्वा प्रत्यय होकर कृत्वा रूप बनता है।

अन्यथाकारम् - (अन्य प्रकार से खाता है)

अन्यथा-कृ-णमुल् (आभीक्ष्ण्येणमुल्)	अन्यथाकारम्-सु (स्वौजस.)
अन्यथा-कृ-णमुल् (अन्यथैव.)	अन्यथाकारम्-सु (उपदेशे., तस्य.)
अन्यथा-कृ-णमुल् (हल.,चुटू.,उपदेशे.,तस्य)	अन्यथाकार-स् (कृन्मेजन्तः)
अन्यथा-कृ-अम् (अचोञ्णिति, उरणरपरः)	अन्यथाकारम्-स् (अव्ययात्.)
अन्यथा-क्-आर्-अम् (कृत्तद्धित.)	अन्यथाकारम्।

इति उत्तरकृदन्त-प्रसंगः

परिशिष्ट

(आवश्यक सूत्र, अर्थ सहित)

1. अकः सवर्णे दीर्घ :-

   अर्थ - अ, इ, उ, ऋ, या लृ के पश्चात् यदि सवर्ण स्वर वर्ण हो तो पर के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है।

2. अतोऽम् -

   अर्थ - ह्रस्व अकारांत नपुंसक अंग से परे 'सु' और 'अम्' के स्थान पर 'अम्' आदेश होता है।

3. अमि पूर्वः-

   अर्थ - यदि अ, इ, उ, ऋ, लृ (अक्) से परे अम् का अच् (कोई स्वर) हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है।

4. अप्-तृन-तृच्-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षतृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तृणाम्-

   अर्थ - सम्बुद्धि भिन्न सर्वनाम स्थान परे होने पर अप् (जल), तृनप्रत्ययान्त, तृचप्रत्ययान्त, स्वसृ (बहिन), नप्तृ (दोहता), नेष्टृ (दान देने वाला), त्वष्टृ (एक विशेष असुर), क्षतृ (सारथि व द्वारपाल), होतृ (हवन करने वाला), पोतृ (पवित्र करने वाला) और प्रशास्तृ (शासन करने वाला)शब्दों की उपधा को दीर्घ होता है।

5. अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा -

   अर्थ- (अलोऽन्त्यात) अन्त्य अल् से (पूर्वः) पूर्व वर्ण (उपधा) उपधा संज्ञक हो।

6. अचो ञ्णिति -

   अर्थ - ञित् अथवा णित् परे होने पर अजंत अंग (जिसके अंत में कोई स्वर हो) के स्थान पर वृद्धि हो।

7. अट्-कु-प्वाङ्-नुम्-व्यवायेऽपि -

   अर्थ - अट् प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम्-इनसे व्यवधान होने पर भी रकार या षकार से परे नकार को णकार हो, समान अर्थात् अखंड पद में।

8. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ -

   अर्थ - अजादि (जिसके आदि में कोई स्वर हो) प्रत्यय परे होने पर श्नु-प्रत्ययांत रूप, इवर्णान्त और उवर्णान्त धातुरूप तथा 'भ्रू' रूप अंग को इयङ् और उवङ् आदेश होता है।

9. अचो यत् -

   अर्थ - अजन्त धातु (जिसके अन्त में कोई स्वर वर्ण हो) से 'यत्' प्रत्यय होता है।

10. अजाद्यतष्टाप् -

अर्थ - अजादिगण में पठित 'अज' आदि तथा अकारांत प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग (स्त्रीत्व की विवक्षा) में 'टाप्' (आ) प्रत्यय होता है।

11. अत उपधाया :

अर्थ - ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर उपधा के ह्रस्व अकार के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है।

12. अतो गुणे -

अर्थ - अपदांत ह्रस्व अकार से अ,ए, ओ (गुण) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

13. अतो रोरप्लुता दप्लुते -

अर्थ - अप्लुत अकार (अर्थात् ह्रस्व अकार) परे होने पर अप्लुत अकार (अर्थात् ह्रस्व अकार) से पर रु (र्) के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश होता है।

14. अदर्शनं लोप :

अर्थ - (स्थानस्य) विद्यमान का (अदर्शनम्) न सुना जाना, (लोपः) 'लोप' कहलाता है।

15. अदसो मात -

अर्थ - 'अदस्' शब्द के अवयव मकार से पर ईकार और ऊकार प्रगृह्य-संज्ञक होते हैं।

16. अनचि चॅ -

अर्थ - (अनचि)अच् परे न होने पर (अचः) अच् के पश्चात् (यरः) के स्थान पर (वा) विकल्पसे (द्वे) दो होते हैं।

17. अनिदितां हल उपधाया : क्डि.ति -

अर्थ - यदि कित् या ङि.त् प्रत्यय परे हो तो अनिदित् (जिसके ह्रस्व इकार की इत् संज्ञा न हुई हो) हलन्त (जिसके अंत में कोई व्यंजन हो) अंगों के उपधा के नकार का लोप हो जाता है।

18. अपृक्त एकाल् प्रत्यय : -

अर्थ - (एकाल) एक अल् अर्थात् एक वर्ण वाला (प्रत्ययः) प्रत्यय (अपृक्त) अपृक्त-संज्ञक हो।

19. अव्ययादाप्सुपः -

अर्थ - अव्यय से विहित आप् (टाप्,. डाप् आदि स्त्री प्रत्यय) तथा सुप् (सु,औ, जस् आदि) प्रत्ययों का लुक् अर्थात् लोप होता है।

20. अभ्यासे चर्च -

अर्थ - अभ्यास में झलों के स्थान पर चर् हो और जश् भी। झल् प्रत्याहार में सभी वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण तथा श्, ष्, स्, ह्, का समावेश होता है। इनके स्थान पर आदेश है-चर और जश्।

21. अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा -

अर्थ - प्रतिषेध (निषेध) वाचक 'अल' और 'खलु' के उपपद रहने पर धातु से विकल्प से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। 'क्त्वा' का ककार इत संज्ञक है, अतः उसका लोप हो जाता है। केवल 'त्वा' ही शेष रह जाता है।

22. आतो युक् चिण्-कृतोः

अर्थ - चिण् और कित्-णित् कृत प्रत्यय परे होने पर आकारांत अंग का अवयव 'युक्' होता है।

23. आतो लोप इटि चॅ -

अर्थ - अजादि (जिसके आदि में कोई स्वर वर्ण हो) आर्धधातुक, कित्-डि.त् और इट् परे होने पर दीर्घ आकार का लोप होता है।

24. आदिर्ञिटुडवः -

अर्थ - उपदेश में आदि (प्रारंभिक) ञि, टु और डु इत्संज्ञक होते हैं। उपदेशावस्था में ऐसा धातुओं के विषय में ही संभव होता है।

25. आदेच उपदेशेऽशिति -

अर्थ - यदि शित् प्रत्यय परे न हो तो उपदेशावस्था में एजन्त धातु (जिसके अंत में ए,ओ,ऐ या औ हो) के स्थान पर आकार होता है।

26. आद् गुणः -

अर्थ - (संहितायाम्) संहिता के विषय में (आत्) अवर्ण से (अचि) अच् परे होने पर (पूर्व-परयोः) पूर्व और पर के स्थान पर (एकः) एक (गुणः) गुण आदेश होता है।

27. आद्यन्तौ टकितौ -

अर्थ - (टकितौ) टित् और कित् (आद्यन्तौ) आद्यवयव और अन्तावयव होते हैं। अर्थात् टित् और कित् यदि किसी के अवयव विधान किए जावे तो टित् उसका आद्यवयव और कित् उसका अन्तावयव होता है।

28. आर्धधातुकस्येड् वलादेः -

अर्थ - (बलादेः) बलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक का अवयव (इड्) इट् हो। अर्थात् व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्., ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्, ह्, इनमें से जब कोई व्यंजन आर्धधातुक के आदि में आता है तो आर्धधातुक से 'इट्' का आगम होता है।

29. आयनेयीनीयियः फ-ढ-ख-छ-घां प्रत्ययादीनाम् -

अर्थ - (प्रत्ययादीनाम्) प्रत्यय के आदि (फढखछघाम) फकार, ढकार, खकार, छकार और घकार के स्थान पर (आयनेयीनीयियः आयन् + एय् + ईन् + ईय् + इयः) आयन एय्, ईन्, ईय् और इय् आदेश होता है।

30. आ सर्वनाम्न : -

अर्थ - दृग, दृश और वतु परे होने पर सर्वनाम के स्थान पर आकार आदेश होता है।

31. इको झल् -

अर्थ - इगन्त (जिसके अंत में इ, उ, ऋ, या लृ हो) धातु के बाद झलादि सन् (जिसके आदि में कोई झल् वर्ण हो) कित् होता है।

32. इको यणचि -

अर्थ - स्वर-वर्ण परे होने पर संहिता के विषय में इ, उ, ऋ, लृ के स्थान पर य, व, र, ल आदेश होते हैं।

33. इग्यणः संप्रसारणम्

अर्थ - (यणः) यण् के स्थान पर विधान किया गया (इक्) इक् (सम्प्रसारणम्) संप्रसारणसंज्ञक हो।

34. इतश्चँ -

अर्थ - डि.त, लकार (लुङ् , लङ्., लिङ्. और लृङ्.) संबंधी इकारान्त परस्मैपद का लोप होता है। 'अलोऽन्त्यस्य' 1.1.52 परिभाषा से यह लोप अन्त्यवर्ण इकार का ही होता है।

35. इदितो नुम् धातो :

अर्थ - जिस धातु के ह्रस्व इकार की इत्संज्ञा हुई हो, उसको 'नुम' (न) आगम हो जाता है।

36. इषु-गमि-यमां छः

अर्थ - शित् प्रत्यय (जिसका शकार इत्संज्ञक हो) परे होने पर इष् (इच्छा करना), गम् (जाना) और यम् (निवृत्त होना) के स्थान पर छकार होता है।

37. ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् -

अर्थ - यदि किसी शब्द का द्विवचन ईकारान्त, ऊकारांत या एकारांत होगा तो वह "प्रगृह्य" संज्ञक होगा। यह प्रगृह्य-संज्ञा अन्त्य ईकार, ऊकार या एकार की ही होती है।

38. उगितश्च –

अर्थ- उगिदन्त प्रातिपदिक (जिसका अन्त्य; उकार, ऋकार या लृकार इत् हो) से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) प्रत्यय होता है।

39. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः-

अर्थ- यदि सर्वनामस्थान (सु, औ, अम्, औट्) परे हो तो धातुभिन्न 'उगित्' (जिसमें उ, ऋ और लृ की इत्संज्ञा हो) और नकारलोपी (जिसके नकार का लोप हुआ हो) 'अञ्चु' धातु का अवयव 'नुम्' (न) होता है।

40. उद ईत् -

अर्थ - उद् से परे लुप्त नकारवाली 'अंचु' धातु के भसंज्ञक अंग के अकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है।

41. उदः स्थास्तम्भो पूर्वस्य -

अर्थ- 'उद्' उपसर्ग से परे स्था और स्तम्भ् के स्थान पर पूर्व का सवर्ण आदेश होता है।

42. उपपदमतिङ् -

अर्थ - उपपद का समर्थ के साथ नित्य समास होता है और यह समास अतिङन्त होता है अर्थात् समास का उत्तरपद तिङन्त नहीं होता।

43. उरण् रपरः -

अर्थ - (उः) ऋ वर्ण के (स्थाने) स्थान पर (स्थानम्) प्राप्त होता हुआ (अण्) अ, इ या उ (रपरः) रकार-परक या लकार-परक होता है।

44. उरत् -

अर्थ - अभ्यास के अवयव ऋवर्ण के स्थान पर ह्रस्व अकार आदेश होता है।

45. ऋत उत् -

अर्थ - ह्रस्व ऋकार से यदि ङसि अथवा ङस् का अंत् (ह्रस्व अकार) परे हो, तो पूर्व पर के स्थान पर एक ह्रस्व उकार आदेश हो।

46. ऋतइद्धातोः-

अर्थ - (ऋतः) ऋकारान्त (धातोः) धातु के स्थान में (इत्) ह्रस्व इकार आदेश होता है।

47. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च -

अर्थ - सम्बुद्धिभिन्न 'सु' परे होने पर ऋकारान्त, उशनस, पुरूदंसस् तथा अनेहस् शब्दान्त अंगों के स्थान पर अनङ् आदेश होता है।

48. एत्येधत्यूठ्सु -

अर्थ - अवर्ण (ह्रस्व या दीर्घ 'अ') से एजादि 'इण्' और एध् धातु (जिस 'इण्' और 'एध्' धातु के आदि में ए, ओ, ऐ या औ हो) तथा 'ऊठ्' परे होने पर पूर्व और पर वर्ण के स्थान पर वृद्धि (आ, ऐ या औ) एकादेश होता है।

49. कर्तरि शप् -

अर्थ - कर्तावाची (कर्तृवाच्य में) सार्वधातुक परे होने पर धातु से 'शप्' प्रत्यय होता है।

50. कुहोश्चुः -

अर्थ - अभ्यास के कवर्ग और हकार के स्थान पर चवर्ग आदेश होता है। क वर्ग के वर्णो को क्रमशः च वर्ग के वर्ण आदेश होंगे, जैसे ककार को चकार, खकार को छकार आदि।

51. कृत्तद्धितसमासाश्चॅ-

अर्थ- कृदन्त (जिसके अन्त में कृत् प्रत्यय हो) तद्धितान्त (जिसके अन्त में तद्धित प्रत्यय हो) और समास भी 'प्रातिपदिक' संज्ञक होते हैं।

52. कृन्. मेजन्तः

अर्थ- जिसके अन्त में मकार और एजन्त (जिसके अन्त में ए, ओ, ऐ अथवा औ) कृत्-प्रत्यय हो उसकी अव्यय संज्ञा होती है।

53. ग्क्ङिति चॅ-

अर्थ- गित्, कित् और ङित् परे होने पर तन्निमित्त इक् (इ, उ, ऋ, लृ) के स्थान पर गुण और वृद्धि नहीं होती है।

54. खरवसानयोर्विसर्जनीयः

अर्थ- खर् (वर्गों के प्रथम या द्वितीय वर्ण अथवा श्, ष्, स्) परे होने पर और अवसान में रकारान्त पद के स्थान पर विसर्ग होता है।

55. खरि चॅ

अर्थ- खर्)क्, ख्, च्, घ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ्, श्, ष्, या स्) परे होने पर झल् (ङ्, ञ्, ण्, न् और म् को छोड़कर अन्य व्यंजन) के स्थान पर चर् (क्, च्, ट्,त्, प्, श्, ष् और स्) आदेश होते हैं।

56. गृहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छतिः भृंजतीनां ङिति चॅ-

अर्थ- कित् और ङित् परे होने पर ग्रह (क्रयादि., ग्रहण करना), ज्या (क्रयादि., वृद्ध होना), वेञ् (भ्वादि., बुनना), व्यध् (दिवादि., बेधना), वश् (अदादि., इच्छा

करना), व्यच् (तुदादि. ठगना), व्रश्च (तुदादि., काटना), प्रच्छ् (तुदादि., पूछना) और भ्रस्ज्) (तुदादि., भूनना) इन नौ धातुओं के य, व, र और ल के स्थान पर क्रमशः इ, उ, ऋ, और लृ आदेश होते हैं।

57. ङिच्चॅ-

अर्थ- ङकार इत् वाला आदेश अन्त्य अल् (वर्ण) के स्थान पर होता है।

58. ङ्याप्प्रातिपदिकात्-

अर्थ- ङी-प्रत्ययान्त (जिनके अन्त में ङीप्. ङीष्, ङीन् हो) आप् प्रत्ययान्त (जिनके अन्त में टाप्, चाप् या डाप् हो) और प्रातिपदिक (अर्थवान् शब्द, कृदन्त, तद्धित-युक्त या समास) से परे होते हैं।

59. चादयोऽसत्त्वे -

अर्थ - यदि द्रव्य अर्थ न हो, तो चादिगण में पठित शब्द 'निपात' संज्ञक होते हैं।

60. चुटू -

अर्थ - प्रत्यय के आदि चवर्ग (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्,) और टवर्ग (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्,) इत्संज्ञक होते हैं।

61. चोः कुः -

अर्थ - पद के अंत में या झल् (सभी वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ वर्ग और श्, ष्, स्, ह्,) परे होने पर चवर्ग के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

62. छे चॅ -

अर्थ - संहिता के विषय में छकार परे होने पर ह्रस्व का अवयव 'तुक्' (त्) हो जाता है। कित् होने के कारण।

63. झयो होऽन्यतरस्यॉम् -

अर्थ - वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ वर्ण के पश्चात् हकार के स्थान पर विकल्प से पूर्व वर्ण का सवर्ण होता है।

64. झरो झरि सवर्णे -

अर्थ - सवर्ण झर् परे होने पर हल् (व्यंजन-वर्ण) के पश्चात् झर् का (अन्यतरस्याम्) विकल्प से लोप होता है।

65. झलां जश् झशि -

अर्थ - वर्गों के तृतीय और चतुर्थ वर्ण परे होने पर वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण या श्, ष्, स्, ह् के स्थान पर वर्गों के तृतीय वर्ण (ज्, ब्, ग्, ड्, द्,) आदेश होते हैं।

66. झलां जशोऽन्ते -

अर्थ - पदान्त (पद के अंत में आये हुए) झल् (वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण तथा श्, ष्, स्, ह्) के स्थान पर जश् (ग्, ज्, ड्, द् तथा ब्) आदेश होते हैं।

67. झलो झलि -

अर्थ - झल् (वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण तथा श, ष, स, ह) परे होने पर झल् के पश्चात् सकार का लोप होता है।

68. झषतथोर्धोऽधः -

अर्थ - 'धा' धातु को छोड़कर किसी वर्ग के चतुर्थ वर्ण के बाद यदि तकार या थकार आता है तो उसके स्थान पर धकार आदेश हो जाता है।

69. टिड्ढाणञ-द्वयसज्-दघ्नञ-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-करपः -

अर्थ - टिदन्त (जिसके अंत में इत् टकार या टित् प्रत्यय हो), ढ-प्रत्ययान्त, अण्-प्रत्ययान्त, अञ्-प्रत्ययान्त, द्वयसच्-प्रत्ययान्त, दघ्नच्-प्रत्ययान्त, मात्रच-प्रत्ययान्त, तयप्-प्रत्ययान्त, ठक-प्रत्ययान्त, ठञ्-प्रत्ययान्त, कञ्-प्रत्ययान्त तथा क्वरप्-प्रत्ययान्त अकारान्त अनुपसर्जन (जो गौण न हो प्रधान) प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में 'ङीप्' (ई) प्रत्यय होता है।

70. ठस्येकः

अर्थ - अंग से पर ठ के स्थान पर अदन्त 'इक' आदेश होता है।

71. डति चॅ -

अर्थ - डति प्रत्ययान्त संख्यासंज्ञक शब्द षट्संज्ञक होते हैं।

72. ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः -

अर्थ - ढकार और रकार का लोप करने वाले अर्थात् ढकार और रकार परे होने पर उनसे पूर्व अ, इ और उ के स्थान पर क्रमशः दीर्घ-आकार, ईकार और उकार आदेश होते हैं।

73. णेरनिटि -

अर्थ - अनिडादि (जिसके आदि में इट् न हो) आर्धधातुक परे होने पर 'णि' (णिङ्) का लोप हो जाता है।

74. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य-

अर्थ- सप्तम्यर्थ पद से निर्दिष्ट किया हुआ अव्यवहित पूर्व के स्थान पर होता है। तात्पर्य यह है कि सप्तम्यन्त पद का उच्चारण कर जिस कार्य का विधान किया जाता है, वह कार्य व्यवधान-रहित पूर्व के ही स्थान पर होता है।

75. तस्य परमाम्रेडितम्

अर्थ - जिसका द्वित्व हुआ हो अर्थात् जो दो बार पढ़ा गया हो, उसके पीछे वाला पद 'आम्रेडित कहलाता है।

76. तस्य लोपः -

अर्थ - उस इत् संज्ञक का लोप होता है। तात्पर्य यह है कि जिसकी भी 'इत्' संज्ञा होती है उसका लोप हो जाता है।

77. तिङ्. शित् सार्वधातुकम् -

अर्थ - (तिङ्.) तिङ्., (शित्) शित्, (सार्वधातुकम्) सार्वधातुक-संज्ञक हो अर्थात् धात्वाधिकार में ही तिङ्. शित् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है।

78. तुल्यास्यप्रत्यनं सवर्णम् -

अर्थ - जिन वर्णों के कण्ठादि स्थान और आभ्यन्तर यत्न दोनों ही समान होते हैं, वे परस्पर (एक दूसरे के) 'सवर्ण' कहलाते हैं।

79. तोर्लि

अर्थ - लकार परे होने पर तवर्ग (त्, थ्, द्, ध्, न्) के स्थान पर सवर्ण होता है। यहाँ पर लकार है। लकार का लकार के सिवा अन्य कोई सवर्ण नहीं। अतः दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि लकार परे होने पर तवर्ग के स्थान पर लकार ही आदेश होता है।

80. दूराद्धूते च -

अर्थ - दूर से सम्बोधन (पुकारने) में प्रयुक्त वाक्य की 'टि' प्लुत और उदात्त होती है। तात्पर्य यह है कि यदि किसी को दूर से पुकारने के लिए किसी वाक्य का प्रयोग हो तो उस वाक्य की 'टि' प्लुत होती है।

81. नक्त्वासेट -

अर्थ - 'इट्' सहित 'क्त्वाकित्' नहीं होता है। 'क्त्वा' ककार इत् होने के कारण 'कित्' है।

82. न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य -

अर्थ - प्रातिपदिक संज्ञक पद के अन्त्य नकार का लोप हो।

83. न विभक्तौ तुस्माः -

अर्थ - विभक्ति में स्थित तवर्ग (त, थ, द, ध, न), सकार और मकार इत्संज्ञक नहीं होते हैं।

84. नश्चऽपदान्तस्य झलि -

अर्थ - वर्गों का प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ वर्ण अथवा श्, ष्, स् या ह् परे होने पर अपदान्त नकार और अपदान्त मकार के स्थान पर अनुस्वार (ं) आदेश होता है।

85. न षट्स्वस्रादिभ्यः -

अर्थ - षष् पंचन् आदि षट्संज्ञको और स्वसृ (बहिन), तिसृ (तीन स्त्रियां), चतसृ (चार स्त्रियां), ननान्दृ (पति की बहिन, ननन्द), दुहितृ (लड़की), यातृ (पति के भाई की पत्नी) तथा मातृ (माता) शब्दों से परे 'ङीप' और 'टाप्' प्रत्यय नहीं होते।

86. नामि -

अर्थ - अजन्त अंग (जिसके अन्त में कोई स्वर हो) को 'नाम' परे होने पर दीर्घ होता है।

87. पदान्तस्य -

अर्थ - रकार और षकार से परे पदान्त नकार को णकार न हो।

88. पदान्ताद्वाॅ -

अर्थ - छकार परे होने पर पदान्त (पद के अंत में आने वाले) दीर्घ (आ, ई, ऊ आदि) का अवयव विकल्प से 'तुक्' (त्) होता है। कित् होने के कारण।

89. पुगन्तलघूपधस्य चॅ -

अर्थ - सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर पुगंत (जिसके अंत में पुक आगम हो) और लघूपध (जिसकी उपधा लघु हो) अंगके इक् (इ, उ, ऋ और लृ) के स्थान में गुण आदेश होता है।

90. पुमः खय्यम्परे -

अर्थ - अम्परक खय् (जिस 'खय्' प्रत्याहार के वर्ण के पश्चात् 'अम' प्रत्याहार का वर्ण हो) परे होने पर 'पुम्' के स्थान पर 'रू' (र्) आदेश होता है।

91. पूर्वोऽभ्यासः -

अर्थ - जहाँ एकाचो-0' 6.1.1 या 'अजादेः-0' 6.1.2 के अधिकार में द्वित्व करके दो रूप बनाये गये हो वहाँ पूर्व रूप 'अभ्यास' कहलाता है।

92. प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम -

अर्थ - प्रत्ययलक्षण प्रत्ययनिमित्तक कार्य को कहते हैं। इस प्रकार प्रत्यय का लोप हो जाने पर भी प्रत्यय को मानकर होने वाला कार्य हो जाता है।

93. प्रत्ययः -

अर्थ - तीसरे, चौथे और पाँचवें अध्याय में आने वाले सूत्रों से जिनका विधान किया जावे, उनको 'प्रत्यय' कहते हैं।

94. प्राक्कडारात् समासः -

अर्थ - इस सूत्र से लेकर 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु' 2.2.37 तक सभी सूत्र समास का विधान करते हैं।

95. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् -

अर्थ - अच (स्वर-वर्ण) परे होने पर प्लुत और प्रगृह्य प्रकृति से रहते हैं अर्थात् सन्धि कार्य नहीं होता है। अर्थात् प्लुत या प्रगृह्य संज्ञक वर्ण के पश्चात् कोई स्वर-वर्ण आता है तो परस्पर संधि कार्य नहीं होता है।

96. भस्य टेर्लोपः-

अर्थ - भ-संज्ञक पथिन् मथिन् तथा ऋ भुक्षिन् शब्दों की 'टि' का लोप हो जाता है।

97. भावे -

अर्थ - भाव अर्थ में धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता है। भाव दो प्रकार का होता है- साध्यावस्थापन्न और सिद्धावस्थापन। यहाँ सिद्धावस्थापनभाव अभिप्रेत है।

98. भिक्षादिभ्योऽण् -

अर्थ - षष्ठयन्त 'भिक्षा' आदि शब्दों से समूह अर्थ में 'अण्' (अ) प्रत्यय होता है।

99. भो-भगो-अघो-अ-पूर्वस्य योऽशि-

अर्थ - जिस 'रु' के पूर्व भो, भगो, अघो या अवर्ण हो, उस 'रु' (र्) के स्थान पर अश (स्वर, वर्गों के तृतीय, चतुर्थ या पंचम वर्ण अथवा ह्, य्, व्, र्, या ल्) परे होने पर यकार आदेश होता है।

100. मिदचो ऽन्त्यात् पद :-

अर्थ - यदि मित किसी समुदाय का अवयव होगा, तो उस समुदाय के अन्तिम स्वर के पश्चात् ही आयेगा।

101. मोऽनुस्वारः-

अर्थ - हल् (व्यंजन) परे होने पर मकारान्त पद के स्थान पर अनुस्वार (ं) आदेश होता है।

102. मो राजि समः क्वौ -

अर्थ - यदि क्विप्-प्रत्ययान्त 'राज्' धातु परे हो तो 'सम्' के मकार के स्थान पर मकार ही आदेश होता है।

103. मो नो धातो :-

अर्थ - पद के अंत में धातु के मकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

104. रषाभ्यां नो णः समानपदे -

अर्थ - (समानपदे) एक पद में या अखंड पद में (रषाभ्याम्) रकार और षकार से पर (नः) नकार के स्थान पर (णः) णकार आदेश हो।

105. रुधादिभ्यः श्नम् -

अर्थ - कर्तृवाची सार्वधातुक परे होने पर 'रुध' (रोकना) आदि 25 धातुओं के बाद 'श्नम' आता है। यह 'कर्तरिशप् 3.1.68 से प्राप्त 'शप्' का अपवाद है।

106. रो:सुपि -

अर्थ - सप्तमी का बहुवचन 'सुप्' प्रत्यय परे होने पर 'रु' के स्थान पर विसर्जनीय (विसर्ग) आदेश हो।

107. र्वोरुपधाया दीर्घ इकः -

अर्थ - पद के अंत में रकारान्त और वकारान्त धातु की उपधा के 'इक्' (इ, उ, ऋ, लृ) के स्थान पर दीर्घ आदेश होता है।

108. लशक्वतद्धिते -

अर्थ - तद्धित भिन्न प्रत्यय के आदि लकार, शकार अथवा कवर्ग (क, ख्, ग्, घ्, ङ्) की इत संज्ञा होगी।

109. लोपो यि -

अर्थ - यकारादि (जिसके आदि में यकार है) कित्-ङित् सार्वधातुक परे होने पर (जहातेः) 'हा' धातु के (आतः) आकार का लोप होता है।

110. लोपो व्योर्वलि -

अर्थ - स्वर और यकार को छोड़कर अन्य कोई भी वर्ण परे होने पर यकार और वकार का लोप होता है।

111. वचि-स्वपि-यजादीनां किति -

अर्थ - कित् प्रत्यय परे होने पर वच् (बोलना), स्वप् (सोना) और यज् (यज्ञ करना) आदि धातुओं का सम्प्रसारण होता है। यह सम्प्रसारण धातुगत य्, व्, र् और लकार के ही स्थान पर होगा।

112. वसुस्रंसु-ध्वंस्वनडुहां दः -

अर्थ- सान्त (जिसके अंत में सकार हो), वसु प्रत्ययान्त, 'संसु', ध्वंसु तथा 'अनडुह्' अन्तवाले पदों के स्थान पर दकार आदेश होता है।

113. वान्तो यि प्रत्यये -

अर्थ - संहिता के विषय में यकारादि प्रत्यय परे होने पर भी ओकार और औकार के स्थान पर क्रमशः 'अव' और 'आव्' आदेश होते हैं।

114. वाऽवसाने -

अर्थ - अवसान में झलों को विकल्प से चर् हो। झल् प्रत्याहार में सभी वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ वर्ण और श्, ष्, स्, ह् का समावेश होता है। चर् प्रत्याहार

में सभी वर्गों के प्रथम वर्ण तथा श्, ष्, स् का समावेश होता है। अतः यदि अवसान में किसी वर्ण का प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ वर्ण या श्, ष्, स्, ह् में से कोई वर्ण हो तो उसके स्थान पर सवर्ण वर्ग का प्रथम वर्ण अथवा श्, ष्, स् विकल्प से आदेश होगा।

115. वॉ शरि -

अर्थ - शर् (श्, ष् या स्) परे होने पर विसर्ग के स्थान पर विकल्प से विसर्ग ही होता है।

116. वाह ऊठ्

अर्थ - भसंज्ञक वाह् के स्थान पर सम्प्रसारण ऊठ् आदेश हो 'वाह्' के वकार के स्थान पर ही 'ऊठ्' होगा।

117. विभाषा चिण्णमुलोः -

अर्थ - चिण् और णमुल परे होने पर 'लभ्' (भवादि. पाना) धातु का अवयव विकल्प से 'नुम्' होता है।

118. विसर्जनीयस्य सः

अर्थ - खर् (वर्गों के प्रथम या द्वितीय वर्ण अथवा श्, ष्, स्) परे होने पर विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।

119. वृद्धिरादैच् -

अर्थ - दीर्घ आकार, दीर्घ ऐकार और दीर्घ औकार (वृद्धिः) 'वृद्धि' संज्ञक होते हैं। अर्थात 'वृद्धि' शब्द से दीर्घ औकार, दीर्घ ऐकार और दीर्घ आकार का ग्रहण होता है।

120. वृद्धिरेचि -

अर्थ - संहिता के विषय में (आत) अवर्ण से (एचि) ए, ओ,ऐ और औ परे होने पर (पूर्वः परयोः) पूर्व और पर के स्थान पर (एकः) एक (वृद्धि) वृद्धि आदेश होता है।

121. वेरपृक्तस्य -

अर्थ - अपृक्तसंज्ञक वकार का लोप होता है।

122. व्रश्च-भ्रस्ज-सृज-मृज-यज-राज-भ्राज-च्छशां षः -

अर्थ - झल् परे होने पर या पदान्त में व्रश्च (काटना), भ्रस्ज (भूनना), सृज (पैदा करना), मृज (शुद्ध करना), यज् (यज्ञ करना), राज् और भ्राज् (दीप्तिमान होना) तथा छकारान्त और शकारान्त शब्दों के स्थान पर षकार आदेश होता है।

123. शपश्यनोर्नित्यम् -

अर्थ - नदी संज्ञक और 'शी' (ई) परे होने पर 'शप' (अ) और 'श्यन्' (य) के 'शतृ' (अत्) का अवयव 'नुम्' होता है। 'मित' होने से यह 'नुम' (न) 'शतृ' (अत्) के अन्त्य स्वर-अकार के पश्चात आता है।

124. शश्छोऽटि -

अर्थ - अट् (सभी स्वर और ह्, य्, व्, र्) परे होने पर पदान्त झय् (वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण) के पश्चात् शकार के स्थान पर विकल्प से छकार आदेश होता है।

125. शासि-वसि-घसीनां चँ -

अर्थ - कवर्ग, स्वर-वर्ण अथवा ह, य, व, र और ल् के पश्चात् यदि शास्, वस् और घस्, धातुएँ आती हैं तो उनका सकार मूर्धन्य हो जाता है।

126. ष्टुना ष्टुः-

अर्थ- ष्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, या ण् के योग में स्, त्, थ्, द्, ध् और न् के स्थान पर क्रमशः ष्, ट्, ठ्, ड्, ढ् और ण् आदेश होते हैं।

127. ष्णान्त षट्-

अर्थ- षकारान्त और नकारान्त संख्यावाचक शब्द की षट् संज्ञा होती है।

128. सनाद्यन्ता धातवः-

अर्थ- (सनाद्यन्ताः) सनादि अन्तवाले (धातव) धातु संज्ञक हो।

129. स-सजुषो रुः-

अर्थ- सकारान्त और सजुष-शब्दान्त पद के स्थान पर 'रु' (र) आदेश होता है।

130. सान्त महतः संयोगस्य-

अर्थ- सम्बुद्धिभिन्न सर्वनाम स्थान (सु, औ, जस्, अम् तथा औट्) परे होने पर सकासन्त संयोग के तथा महत् शब्द के नकार की उपधा के स्थान पर दीर्घ आदेश होता है।

131. सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः-

अर्थ- सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे होने पर इक् (इ, उ, ऋ, लृ) अन्तवाले अंग के स्थान पर गुण आदेश होता है।

132. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः-

अर्थ- धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुप् (सु, और, जस आदि 21 प्रत्ययों में से कोई) का (लुक्) लोप होता है।

133. सृजि-दृशोर्झल्यमकिति-

अर्थ- यदि कित् को छोड़कर अन्य कोई झलादि प्रत्यय (जिसके आदि में झल् वर्ण हो) परे हो तो सृज (छोड़कर) और दृश् (देखना) इन दो धातुओं का अवयव 'अम्' होता है।

134. सम्प्रसारणांच्चॅ-

अर्थ- सम्प्रसारण से अच् (कोई स्वर) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान पर एक पूर्वरूप आदेश होता है।

135. संयोगान्तस्य लोपः-

अर्थ-संयोगान्त पद (जिस पद के अन्त में संयोग हो) का लोप होता है। दूसरे शब्दों में जिस पद के अन्त में संयोग हो उसका लोप हो जाता है।

136. स्तोः श्चुना श्चुः-

अर्थ- यदि शकार और चवर्ग (च्,छ, ज्, झ्, ञ्,) के साथ सकार और तवर्ग त्,थ्, द्,ध्, न् का योग हो तो सकार और तवर्ग के स्थान पर शकार और चवर्ग आदेश होते है।

137. स्कोः संयोगाद्योरन्ते चॅ-

अर्थ- झल् (सभी वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण तथा श्, ष्, स्, ह्,) परे होने पर पद के अन्त में जो संयोग हो उसके आदि सकार और ककार का लोप हो जाता है।

138. स्त्रियाम्-

अर्थ- प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में प्रत्यय होते हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिए।

139. स्तोकान्तिक-दूरार्थ-कृच्छाणि क्तेन-

अर्थ- स्तोक (थोड़ा), अन्तिक (समीप), दूरार्थवाचक (दूरी का अर्थ बताने वाला) और कृच्छ् (कष्ट) इन चार प्रातिपादिकों के पंचम्यन्त सुबन्त का 'क्त'-प्रत्ययान्त के सुबन्त के साथ समास होता है और उस समास को 'तत्पुरुष' कहते है।

140. स्वमोर्नपुंसकात्-

अर्थ- नपुंसक से परे 'सु' और 'अम्' का लुक् (लोप) होता है।

141. स्वादिभ्यः श्नुः-

अर्थ- कर्तृववाची सार्वधातुक से परे होने पर 'सु' आदि धातुओं से 'श्नु' आता है।

142. स्वौजसमौट्छष्टाभ्याभ्भिस्-ङेभ्याम्भ्यस्-ङसिभ्याम्भ्यस-ङसोसाम्-ङ्योस्सुप्-

अर्थ- ङी-प्रत्ययान्त, आप्-प्रत्ययान्त और प्रातिपदिक से परे सु, औ, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, भ्याम्, भिस् ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ङस्, ओस्, आम्,, ङि, ओस और सुप्-ये इक्कीस प्रत्यय होते हैं।

143. हलन्त्यम् -

अर्थ - उपदेश में वर्तमान अन्त्य व्यंजन इत्संज्ञक होता है। अर्थात् उपदेश के अंत में होने वाला व्यंजन 'इत्' कहलाता है।

144. हलादिः शेषः -

अर्थ - अभ्यास का आदि (प्रारंभ का या प्रथम) हल् (व्यंजन-वर्ण) शेष रह जाता है। तात्पर्य यह है कि अभ्यास के प्रारंभिक व्यंजन को छोड़कर अन्य सभी व्यंजनों का लोप हो जाता है।

145. हलि चँ -

अर्थ - यदि हल् (व्यंजन-वर्ण) परे हो तो रकारान्त और वकारान्त धातु की उपधा के इक् (इ,उ, ऋ या लृ) के स्थान पर दीर्घ आदेश होता है।

146. हलोऽनन्तराः संयोगः

अर्थ - यदि स्वर वर्ण का व्यवधान न हो तो दो या दो से अधिक व्यंजनों को 'संयोग' कहते हैं।

147. हलो यमां यमि लोपः -

अर्थ - हल् (व्यंजन-वर्ण) के पश्चात् यम् का यम् होने पर विकल्प से लोप होता है।

148. हल्ड.याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् -

अर्थ - हलन्त (जिसके अंत में व्यंजन हो) ड.यन्त (जिसके अंत में डी प्रत्यय हो) तथा आबन्त (जिसके अंत में 'आप्' प्रत्यय हो) अंग से परे 'सु' 'ति' तथा 'सि' के अपृक्त रूप हल् का लोप हो।

149. हशि चँ -

अर्थ - हश् (वर्गों के तृतीय, चतुर्थ या पंचम वर्ण अथवा ह्, य्, व्, र्, या ल्,) परे होने पर भी अप्लुत अकार (अर्थात् ह्रस्व अकार) के पश्चात् 'रु' के स्थान पर ह्रस्व उकार होता है।

150. हे मपरे वाँ -

अर्थ - मकारपरक (जिसके पश्चात् मकार हो, ऐसा) हकार परे होने पर मकार के स्थान पर विकल्प से मकार ही होता है।

151. हो ढः -

अर्थ - झल् परे होने पर या पद के अन्त में हकार के स्थान पर ढ़कार हो जाता है।